सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक
योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन: सवाई, आगरा

वर्ष ८ | जून १९७४ | अंक ३

प्रकाशक

इस अंक में:—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. प्रातः वन्दना विघलेऽस्तवाय		१
२. योगी को शुभन ज्ञान (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३. शब्द ब्रह्म का प्रकाश	श्री हरिभक्त चैतन्य	६
४. राजनीतिज्ञों को योग की आवश्यकता	श्रीमती सरिता भारद्वाज	१४
५. महाप्रभु से (कविता)	श्री राघवेन्द्र तिवारी	१७
६. श्री भादुरी महाशय से भेंट	श्री विजयसिंह	१८
७. श्री कबीर संत, सिद्ध एवं सतगुरु	श्री केशव उपाध्याय	२२
८. योगेश्वर रंक्त जी	श्री मानिक चन्द	२८
९. प्रभु विनती	श्री रूपनारायण दुबे	३१
१०. शरीर में देव ऋषि स्थान	पं० रामस्वरूप शास्त्री	३२
११. योग का तृतीय अंग-आसन	श्री हीरालाल शास्त्री	३४
१२. कल्याण का स्रोत सद्गुरु-शरण	श्री रघुराजसिंह	३७
१३. गंगाजी	श्री गंगादास जी	४१
१४. पत्रम्-पुष्पम् फलम्-तोयम्		४४
१५. स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें	श्री शारदा शङ्कर त्रिपाठी,	४६
१६. आहार शुद्धि	टाइटिल का	—४

संयुक्त सम्पादक
दिव्य

फोन ६६१६८

सिद्ध योग

वर्ष ८
अङ्क ३

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं स विसृतो, मुक्तिमाप्नोति मर्त्यः ।
सत्यग्रन्थान्, बहुविधमदत् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

जून
१९७५

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् ।
आदित्य वर्णं तमसः परस्तात् ॥
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति ।
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

—यजुर्वेद अ० ३१ मं० १८

अविद्या रूप अन्धकार से अतीत तथा सूर्य की भाँति प्रकाश स्वरूप इस महान पुरुष को मैं जानता हूँ। उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु को पार कर जाता है। परम पद की प्राप्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

भावार्थ

अविद्या अन्धकार से सर्वथा अतीत प्रकाश स्वरूप प्रभु को जानकर ही मनुष्य जन्म मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पाने में समर्थ होता है। परमपद की प्राप्ति के लिए इसके अतिरिक्त अन्य दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है।

हमारा विशेष लेख—

योगी को भुवन ज्ञान

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

—※—

'सिद्धयोग' के गत वर्ष के कतिपय अंकों में हमने 'योग-दर्शन' के विभूतिपाद में वर्णित विभूतियों के स्पष्टीकरण के लिये कुछ लेख प्रकाशित किये थे। आशा है पाठक समुदाय उन लेखों को पढ़कर अपने आपको योग-मार्ग में चलाने के लिये प्रयत्नशील हुआ होगा। 'सिद्धयोग' के विशेषांक से पहले प्रकाशित भाद्र के अंक में प्रवृत्त्यालोकन्यास से सूक्ष्म से सूक्ष्म छुपे हुए और दूर की वस्तुओं के ज्ञान की योग्यता से साधक प्राप्त कैसे कर लेता है, इस पर प्रकाश डाला था इससे आगे के सूत्र में भगवान् पतञ्जलिदेव ने उससे भी अधिक हितकर 'भुवन ज्ञान' का उपदेश किया है। हमारे कुछ लेखों को पढ़ करके पाठक समुदाय यह भी भली प्रकार समझ गया होगा कि योगी को अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करने के लिये संयम के बल की आवश्यकता रहती है। और संयम समाधि के दृढ़तर अभ्यास से ही सिद्ध होता है।

समाधि की उत्कृष्ट स्थिति को ही संयम कहा जा सकता है। संयम की परिभाषा लिखते हुए श्री पतञ्जलिदेव ने "त्रयमेकत्र संयमः" कहकर के संयम की परिभाषा को समझाया है। अर्थात् योगी का मन धारणा, ध्यान, समाधि तीनों में एक विषयक रहे अर्थात् व्यवधान रहित रहे तब योगी की लगाई हुई समाधि ही संयम का रूप धारण कर लेती है एवं उस योगी का मन इतना संयमित बन जाता है कि जब जहाँ वह अपने मन को लगाना चाहेगा लगा देगा और तब वह उस वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान लेगा। सूक्ष्म व्यवहित एवं विप्रकृष्ट ज्ञान के बाद भगवान पतञ्जलि देव 'भुवन ज्ञान' का उपदेश करते हैं।

श्री पतञ्जलिजी ने लिखा है "भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात्" अर्थात् सूर्य में संयम करने से योगी को अनायास ही सारे भुवनों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। देखना नेत्र का विषय है। मनुष्य की आँखों में रोशनी होती है तो वह सब कुछ देख ही सकता है। जिसकी आँखों में रोशनी ही न हो तो वह देखेगा ही क्या। योगी को दूर दर्शन, दूर स्पर्शन आदि की शक्ति तप के द्वारा उपलब्ध हो जाया करती है किन्तु दूर दर्शन, दूर स्पर्शन भी तभी हो सकता है जब कि योगी के अन्दर प्रकाशशक्ति एवं दर्शन-शक्ति

बनी हुई हो। स्पर्शन शक्ति के मौजूद रहने पर ही योगी दिव्य देव लोकों तक का स्पर्श कर सकता है। यदि यह शक्ति योगी के अन्दर नहीं है तो वह शक्ति का विकास नहीं कर सकता। बीज से ही वृक्ष बनता है। योगी अपनी आंखों से थोड़ी दूर तक के विषयों को देख सकता है किन्तु यदि उसकी आंखों पर खुर्दबीन या दूरबीन का चश्मा चढ़ा दिया जावे तो वह कई कई मील की दूरी तक देख सकता है। सूर्य अग्नि तत्व का केन्द्र है योगी जिस समय अपनी इस शक्ति को अर्थात् अपनी आंख की शक्ति को सूर्य के तेज से मिला देगा तो भुवन मात्र के सभी दृश्यों को भली प्रकार से देख लेगा, क्योंकि योगी की आंख की शक्ति अब परिमित नहीं रही। वह एक अपरिमित शक्ति के अन्दर मिलकर के अपरिमित हो गई है। अतः भुवन मात्र में जहां-जहां सूर्य की रश्मियें पहुंचेगी वहां-वहां के ज्ञान को योगी अवश्य ही प्राप्त कर लेगा। अब रही बात यह कि हर व्यक्ति संयम के अर्थ को भली प्रकार से समझता भी है या नहीं। सूर्य में संयम करने से भुवन ज्ञान प्राप्त तो अवश्य ही हो जाता है यदि योगी को सूर्य में संयम करने की विधि का ज्ञान यथार्थ में हो। कितने ही लोग तो संयम के अर्थ को रोकना मात्र ही समझते हैं और किसी से बिना पूछे बिना सोचे समझे देदीप्यमान सूर्य मण्डल के अन्दर त्राटक की विधि से देखना आरम्भ कर देते हैं और थोड़े ही दिनों में परिणाम दुष्परिणाम के रूप में सामने आ जाता है और वह नेत्र शक्ति से जाती ही बैठते हैं। बीज से वृक्ष को बनाया जा सकता है किन्तु यदि बीज को पहले ही आग में भून दिया जाय तो वृक्ष तो बनना दूर रहा वह बीज ही नष्ट हो जायेगा। पिछले दिनों चण्डीगढ़ में जिस समय हिन्दी आन्दोलन शुरू हुआ उस आन्दोलन में एक व्यक्ति ने विशाल भवन के सामने बैठ करके सूर्य को त्राटक विधि से देखना आरम्भ कर दिया। जब कोई पूछता क्या कर रहे हो तो वह कहता कि मैं सूर्य में संयम करके सारे भुवन को एक साथ देखने की ताकत पैदा कर रहा हूं किन्तु तीन दिन के अन्दर ही उसकी साधना का दुष्परिणाम सामने आया और वह मनुष्य नेत्र की ज्योति से रहित हो गया। वस्तुतः संयम इस वस्तु का नाम नहीं। योगियों का सूर्य नाभिमण्डल में वास करता है। योग विधि से उसी सूर्य में संयम करने से योगी को भुवन मात्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिस प्रकार कायाव्यूह में संयम करने से योगी को कायाव्यूह का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी ने बहुत बड़ा भाष्य लिखा है जिसमें बहुत से लोकों का वर्णन किया है। जिस समय योगी सूर्य में संयम करता है तो भुवन ज्ञान के साथ उन सभी लोकों को देख जानता है। श्री व्यास देव जी का लिखा हुआ भाष्य पाठकों के हितार्थ ज्यों का त्यों यहां उद्धृत कर उसके अर्थ को संक्षेपतः नीचे लिख रहे हैं। जिसको पढ़कर साधक यह समझ सकेंगे कि सूर्य में संयम करने से भुवन ज्ञान की कितनी बड़ी शक्ति योगी को प्राप्त हो जाया करती है।

व्यास भाष्य–

तत्प्रस्तारः–सप्तलोकाः, तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येष भूर्लोकः, मेरुपृष्ठादारभ्या ध्रुवाद् ग्रहनक्षत्र तारा विचित्रोऽन्तरिक्ष लोकः, तत्परः स्वर्लोकः पञ्चविधो माहेन्द्रस्तृतीयो लोकः, चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकः, त्रिविधो ब्राह्मः, तद्यथा-जन लोकस्तपोलोः सत्यलोक इति,

ब्राह्मस्त्रि भूमि को लोकः,
प्राजापत्यस्ततो महान्।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो,
दिवि तारा भुवि प्रजा ॥

इति ॥

संग्रहश्लोक। तत्रावीचेरुपर्युपरि निविष्टाः षण्महानरकभूमयोघन सलिलानलानिला काशतमः प्रतिष्ठा महाकालाम्बरीष रौरव महारौरव काल सूत्रान्धतामिस्रा, यत्र स्वकर्मोपार्जित दुःख वेदनाः प्राणिनः कष्ट मायु दीर्घमाक्षिप्य जायन्ते, ततो महातल रसातलातल सुतल वितल तलातल पातालाख्यानि सप्त पातालानि, भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपा वसुमती,यस्या सुमेरुर्मध्ये पर्वत राजः काञ्चनः तस्य राजत वैदूर्यस्फटिकहेममणिमयानि शृङ्गाणि, तत्र वैदूर्य प्र भाऽनुरागान्नी लोत्पल पत्र श्यामो नभसो दक्षिणो भागः श्वेतः पूर्वः स्वच्छः पश्चिमः कुरण्ड काभ उत्तरः, दक्षिण पार्श्वे चास्य जम्बूः, यतोऽयं जम्बूद्वीपः तस्य सूर्य प्रचाराद रात्रिन्दिवं लग्नमिव विवर्तते, तस्य नील श्वेत शृङ्गवन्त उदीचीनास्त्रयः पर्वता द्विसहस्रायामाः तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नवनवयोजन साहस्राणि रमणकंहिरण्मयमुत्तराः कुरव इति,निषध हेम कूट हिमशैला दक्षिणतो द्विसहस्रायामाः, तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नवनव योजन साहस्राणि-हरिवर्षं किंपुरुषं भारतमिति, सुमेरो-प्राचीना भद्राश्वा माल्यवत्सीमानः प्रतीचीनाः केतुमाला गन्धमादन सीमानः मध्ये वर्षं मिलावृतम् तदेतद् योजन शतसहस्रं सुमेरोर्दिशिदिशि तदर्धेन व्यूढम, स खल्वयं शतसहस्रायामो जम्बूद्वीपस्ततो द्विगुणेन लवणो दधिनः वलयाकृतिन वेष्टितः ततश्च द्विगुणा द्विगुणाः शाककुशक्रौञ्च शाल्मल मगधपुष्कर द्वीपाः सप्त समुद्राश्च सर्व पराशिकल्पाः सविचित्र शैला वतंसा इक्षुर ससुरासर्पिर्दधिमण्डक्षीर स्वादूदकाः सप्त समुद्र वेष्टिता वलयाकृतयो लोका लोक पर्वत परिवाराः पञ्चाशद्योजन कोटिपरिसंख्यातः, तदेतत्सर्वं सुप्रतिष्ठित संस्थान मण्डमध्ये व्यूढम्, अण्डं च प्रधान स्याणुरवयवो यथाऽऽकाशे खद्योतः, तत्र पाताले जलधौ पर्वतेष्वेतेषु देव निकाया

असुर गंधर्वकिन्नरकिंपुरुषयक्षराक्षस भूत प्रेतपिशाचापस्मारकाप्सरो ब्रह्मराक्षस कूष्माण्ड विनायकाः प्रतिवसन्ति सर्वेषु द्वीपेषु पुण्यात्मानो देव मनुष्याः।

सुमेरुस्त्रिदशानामुद्यान भूमिः, तत्र मिश्रवनं नन्दनं चैत्ररथं सुमानसमित्युद्यानानि, सुधर्मा देवसभा, सुदर्शनं पुरं, वैजयन्तः प्रासादः, ग्रहनक्षत्रतारकास्तु ध्रुवे निबद्धा वायुविक्षेपनियमनोपलक्षित प्रचाराः सुमेरोरुपर्युपरि सन्निविष्टा दिवि विपरिवर्त्तन्ते, माहेन्द्र निवासिनः षट् देवनिकायाः,—त्रिदशा, अग्निष्वात्ता, याम्यास्तुषिता अपरिनिर्मित वश वर्त्तिनः श्चेति। सर्वे संकल्प सिद्धा अणिमाद्यैश्वर्योपपन्नाः कल्पायुषो वृन्दारकाः कामभोगिन औपपादिक देहा उत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिः कृतपरिचाराः। महति लोके प्राजापत्ये पञ्चविधो देवनिकायः-कुमुदाः ऋभवः प्रतर्दना अञ्जनाभाः, प्रचिताभा इति। एते महाभूतवशिनो ध्यानाहारा कल्पसहस्रायुषः। प्रथमे ब्रह्मणो जनलोके चतुर्विधो देवनिकायः ब्रह्मपुरोहिता ब्रह्मकायिका ब्रह्ममहाकायिका अमरा इति। ते भूतेन्द्रियवशिनो द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषः।

द्वितीये तपसि लोके त्रिविधो देवनिकायः आभस्वरा, महाभास्वरा, सत्तमहा भास्वरा इति,

ते भूतेन्द्रिय प्रकृतिवशिनो द्विगुण द्विगुणोत्तरायुषः सर्वे ध्याना हारा ऊर्ध्वरेतस ऊर्ध्वमप्रतिहत ज्ञाना अधर भूमिष्व नावृतज्ञान विषयाः, तृतीये ब्रह्मणः सत्यलोके चत्वारो देवनिकायाः-अच्युताः शुद्ध निवासाः सत्याभाः सञ्ज्ञा सञ्ज्ञिनश्चेति अकृत भवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठा उपर्युपरिस्थिता प्रधानवशिनो यावत्सर्गायुषः तत्राच्युताः सवितर्क ध्यानसुखाः, शुद्धनिवासाः सविचार ध्यान सुखाः सत्याभा आनन्दमात्र ध्यान सुखा, सञ्ज्ञा सञ्ज्ञिनश्चास्मिता मात्र ध्यानसुखाः तेऽपि त्रैलोक्य मध्ये प्रतितिष्ठन्ति, त एते सप्तलोका सर्व एव ब्रह्मलोकाः, विदेह प्रकृतिलयास्तु मोक्षपदे वर्त्तन्ते न लोक मध्ये न्यस्ता इति, एतद् योगिना साक्षात्कर्त्तव्यं सूर्य्यद्वारे संयमं कृत्वा, ततोऽन्यत्रापि, एवन्तावदभ्यसेद् यावदिदं सर्वं दृष्टमिति।

अर्थात्—भुवन का विस्तार सात लोकों का समूह है। उसमें अवीची से मेरुपृष्ठ तक भूलोक कहलाता है। मेरुपृष्ठ से ध्रुव पर्यन्त तक ग्रह नक्षत्र एवं तारागण से चित्रित अन्तरिक्ष लोक है। उससे आगे पाँच प्रकार स्वर्ग लोक है। उन पाँच प्रकारों में प्रथम स्वलोक है तृतीय महेन्द्रलोक है चतुर्थ प्राजापत्य मह लोक है।

उसके बाद तीन प्रकार का ब्रह्मलोक है। उसके नीचे महर्लोक, माहेन्द्र स्वर लोक के नाम से कहा जाता है। उसके नीचे तारागणों से युक्त द्यू लोक एवं उसके नीचे भू लोक है। उनमें अवीची के ऊपर क्रमशः छः नरक भूमियाँ बताई गई हैं। वे घन, सलिल, अनल, अनिल, आकाश तथा तम में ठहरी हुई हैं। उनके नाम क्रमशः महाकाल, अम्बरीष, रौरव, महारौरव, काल-सूत्र एवं अन्धतामिस्त्र हैं जहाँ अपने कर्मानुसार जीवगण दुःख योनी महाकष्ट दीर्घायु लेकर भोगते हैं। उनके बाद महाकाल रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल और पाताल नामक सात पाताल हैं। सप्तद्वीप वाली यह पृथ्वी अष्टम है। काञ्चन पर्वत राज सुमेरु इसी के भीतर है। उसके राजत, वैदूर्य, स्फटिक एवं हेममणि युक्त श्रृंग समूह हैं। उनमें से वैदूर्य प्रभा से रंजित होने के कारण आकाश का दक्षिण भाग नीलोत्पल के समान श्याम है। पूर्व भाग श्वेत तथा पश्चिम स्वच्छ है और उत्तर भाग स्वर्णाभ है। इसके दक्षिण कक्ष में जम्बू है उसी से इसका नाम जम्बू द्वीप कहा जाता है। सुमेरु पर्वत के चारों ओर सूर्य के निरन्तर भ्रमण करने के कारण वहाँ दिन और रात निरन्तर लगे से दिखाई देते हैं अर्थात् सूर्य जिस तरफ बढ़ता है उस तरफ दिन और जिस तरफ से निकलता हुआ चला आता है उस तरफ रात दिखाई देती है। सुमेरु की उत्तर दिशा में दो हजार योजन विस्तार वाले नील, श्वेत तथा श्रृंगवान नामक तीन पर्वत हैं उनके भीतर रमणक हिरण्मय और उत्तर कुरु नामक तीन वर्ष हैं। उनका विस्तार नौ-नौ हजार योजन है। दक्षिण दिशा में दो हजार योजन विस्तार वाले निषिध हेम कूट तथा हिम शैल हैं। उनके अन्दर नौ-नौ हजार योजन विस्तार वाले हरिवर्ष किम्पुरुषवर्ष तथा भारतवर्ष नाम के तीन वर्ष हैं। सुमेरु के पूर्व भाग में माल्यवान तक भद्राश्व तथा पश्चिम में गन्ध मादन तक केतुमाल है। उनमें इला-वृत वर्ष है। जम्बू द्वीप का परिमाण सौ हजार योजन है। वह सुमेरु के चारों ओर पचास हजार योजन तक फैला है। इस प्रकार से सौ हजार योजन जम्बू द्वीप और इससे दूने गोलाकार लवणोदधि से घिरा है इसके बाद क्रमशः शाक कुश, क्रौञ्च शाल्मल, मगध और पुष्कर द्वीप हैं इनमें से प्रत्येक ही पहले की अपेक्षा से दुगना सप्त समुद्र सर्षों के घेर के समान विचित्र शैल मंडित हैं जिनके नाम लवण समुद्र के अतिरिक्त इक्षुरस सुरा घृत दधि मण्ड और दूध जैसे स्वादिष्ट पानी वाले हैं। पचास करोड़ योजन गोलाकार सप्त द्वीप लोक पर्वत समुद्र घिरे हैं। यह सब अण्ड के अन्दर हैं और ये अण्ड भी प्रधान प्रकृति का अणु अवयव है जैसे आकाश में खद्योत हुआ करता है। इस सब पाताल में जलधि में एवं इन सब पर्वतों में आसुर, गंधर्व, किन्नर किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच अपस्मार अप्सरा

ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड तथा विनायक रूप देव योनियों के समूह बसते हैं तथा अन्य द्वीप समूह में पुण्यात्मा देवता एवं मनुष्यगण निवास करते हैं। सुमेरु देवताओं की उद्यान भूमि है वहां मिश्रवन, नन्दन वन, चैत्ररथ और सुमानस ये चार उद्यान सुधर्मा नामक देव सभा सुदर्शन पुर तथा वैजयन्त नामक महा प्रासाद है। ग्रह नक्षत्र एवं तारागणों के समूह ध्रु, के साथ सम्बन्ध होकर घूमते रहते हैं। महेन्द्र लोक निवासी देवगण छः प्रकार के हैं। उनमें त्रिदश अग्निष्वात याम्य तुषित अपरिनिर्मित वशवर्ती एवं परिनिर्मित वशवर्ती हैं। यह सभी लोग संकल्प सिद्धि अणिमादि ऐश्वर्य सम्पन्न कल्पायु वृन्द काम योगी औपपादिक देह धारी दिव्य अप्सराओं से युक्त परिवार वाले हैं। प्राजापत्य महलोक में देव निकाय पांच प्रकार के हैं। कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अञ्जनाभ एवं प्रचिताभ ये सब महाभूत वशी ध्यान मात्र से ही तृप्त रहने वाले सहस्त्र कल्पायु हैं। जन नामक ब्रह्मा के प्रथम लोक में देव निकाय चार प्रकार के हैं। जिनमें से ब्रह्म पुरोहित, ब्रह्मकायिक ब्रह्ममहाकायिक और अमर हैं। ये लोग भूतेन्द्रिय वशी एवं उत्तरोत्तर दुगनी आयु वाले हैं। ब्रह्मा के द्वितीय तपो लोक में देवनिकाय तीन प्रकार के हैं जैसे आभास्वर महाभास्वर सत्य महाभास्वर ये लोग भूतेन्द्रिय तथा तन्मात्र वशी हैं तथा उत्तरोत्तर दुगनी आयु वाले ध्यानाहारी ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्व-त्व एवं सत्य लोक में ज्ञान की सामर्थ्य रखते हैं। ब्रह्मा के तृतीय सत्य लोक में देवनिकाय चार प्रकार के हैं। अच्युत, शुद्धनिवास, सत्याभ संज्ञासंज्ञिन ये लोग भवन शून्य स्वप्रतिष्ठ उत्तरोत्तर ऊपर रहने वाले और महाकल्पायु हैं। उनमें अच्युत गण सवितर्क ध्यान सुख युक्त शुद्ध निवास गण सविचार ध्यान सुख युक्त सत्याभ गण आनन्द मात्र ध्यान सुख युक्त और संज्ञासंज्ञिन गण अस्मिता मात्र ध्यान सुख युक्त हैं। ये सभी लोग त्रिलोक के अन्तर्गत हैं। ये सभी ब्रह्मलोक विदेह लय गण व प्रकृति लय गण वाले मोक्ष पद में हैं। ये लोग लोक में संलग्न नहीं माने जाते। सूर्य द्वार में संयम करके योगी को इन सबका प्रत्यक्ष करना चाहिये इसके अतिरिक्त भी इससे ऊँचे से ऊँचा प्रत्यक्ष कर लेना चाहिये।

व्यास भाष्य पूरे-पूरे अर्थ सहित प्रायः ऊपर लिखा दिया गया है। यद्यपि आज कल भूगोल के अनुसार जम्बू द्वीप और सुमेरु पर्वत का जो विस्तार लिखा है उसका दिखलाई तो नहीं देता और नहीं इक्षुरस आदि के समुद्रों का पूरा-पूरा ज्ञान हो पाता है किन्तु इसमें कोई शंका भी नहीं कि भूत वशी, महाभूत वशी, तन्मात्र वशी, ऊर्ध्वरेता आदि जिन महा योगियों का जिक्र किया है वे लोग अवश्य ही वितर्कानुगत समाधि सुख भागी विचारानुगत समाधि सुख भागी, आनन्दानुगत समाधि सुख भागी एवं अस्मितानुगत समाधि सुख भागी होने से महाकल्पान्त तक देहधारी एवं

अजर अमर होता है। भूत वशी-भूत वशी एवं तन्मात्र वशी योगी सभी कुछ करने की सामर्थ्य वाला होता है। इसलिये योगाभ्यास अभ्यासी साधक को चाहिये वह अभ्यास परायण होकर के सुषुम्ना का साक्षात्कार करके सुषुम्ना द्वार से ही सूर्य में संयम करना सीखे एवं पूर्णरूपेण भुवन ज्ञान को प्राप्त करे। जो भाव व्यास भाष्य में दिखला दिया है उससे भी अतिरिक्त परमात्मा की अनन्त सृष्टि को एवं ईश्वर के ऐश्वर्य को पूर्ण रूपेण देख डाले। जिससे वह कभी भी अपने अमर पद से विचलित न हो सके।

प्राणायाम क्यों ?

सबसे पहले यह समझो कि क्या इतना बड़ा देह किसी कृत्रिम रूप से चलता है। इन्द्रिय मन, बुद्धि इत्यादि युक्त यह जो सुन्दर शरीर है, इसका आधार प्राण ही है। प्राण न होने पर देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि किसी का भी कोई अस्तित्व नहीं रहता एक मात्र प्राण के अस्तित्व से ही सबका अस्तित्व है। जैसे शाखा प्रशाखा काटने पर वृक्ष नष्ट नहीं होता किन्तु जब उसकी जड़ उखाड़ दी जाय तभी शाखा प्रशाखा सहित वृक्ष क्षय को प्राप्त होता है, वैसे ही देह की किसी इन्द्रिय या मन के विनिष्ट होने पर देह नष्ट नहीं होता। प्राण-प्रवाह के बन्द हो जाने पर ही इन्द्रिय मन सहित देह विनाश को प्राप्त हो जाता है। जब तक प्राणों की चंचलता निरुद्ध न हो तब तक इन्द्रियां विषयों के प्रति दौड़ती रहती हैं जिससे प्राण की ही श्रेष्ठता या धारक होना स्पष्ट है। प्राण स्वभाव से ही चंचल है। और उसका यही चंचलपना वह आवरण है, जिसके कारण हमें अपने वास्तविक 'मैं' अर्थात् आत्मा की उपलब्धि नहीं होती। इसी कारण आनन्द मय होते हुए भी आत्मा का अभाव अर्थात् दुःख भोगना पड़ता है। आत्म तत्व का जानना ही साधन की अन्तिम सीमा है। परन्तु प्राण के स्थिर किये बिना इस आत्म तत्व के जानने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए पूजा संध्यादि सब प्रकार की उपासनाओं में प्राणायाम का विधान रक्खा गया है। 'प्राणायाम' शब्द का अर्थ है प्राण का संयम। प्राणायाम के द्वारा ही भूत शुद्धि होती है भूत शुद्धि हो जाने पर किसी देवता की पूजा नहीं की जाती।

—स्वामी नारायणतीर्थ देवजी

मेरी अपनी अनुभूतियां—

शब्द ब्रह्म का प्रकाश

[ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त चैतन्य श्रीदुर्गायोग गुरुकुल दुर्गापुरी]

(ग्राम पोस्ट,गुजरूलगरोटा,जम्मू कश्मीर)

मातृदुग्धमुखा ओंकार शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर प्रतीत होता है कि ओंकार ने ही जगत् का स्वरूप धारण किया है। महर्षि पतञ्जलि ने ॐशब्द ब्रह्म की उपासना बतलाई है। ॐ की उपासना से आत्म साक्षात्कार के मार्ग में आने वाले समस्त विघ्नक्लेशों का विनाश हो जाता है। उपासना के लिये केवल इतना ही लिखा है कि 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' ॐका अर्थ भाव समझते हुए, सर्वोच्च भावनायें ध्यान में रखते जप करने से आदि चेतन तत्व की प्राप्ति होती है। परन्तु जप करने की विधि नहीं बतलाई। क्योंकि योग विद्या गुरुगम्य है। सद्गुरु परम्परा से ही साधना की प्रणाली चलती है।

मूलाधार अथवा श्रीगणेश चक्रः—

श्रीसद्गुरुदेव जी के अनुशासन में दीक्षित होकर प्राणानुप्राणित प्रणवाभ्यास से, शीघ्राति शीघ्र पूर्वकल्मषों की निवृत्ति, और ईश्वरीय अनुग्रह की सम्प्राप्ति, एक साथ सुसाध्य हो जाती है। यति संन्यासियों के लिये नियम है कि प्रति दिन बारह हजार प्रणव जप करें। ४० दिन के अभ्यास से प्रणव स्वयं जागृत हो जाता है। और सम्यगर्थ की प्रतीति भी स्वयं होने लग जाती है। अब मूलाधार चक्र से परावाणी केन्द्रोच्चारित प्रणवनाद की अभिव्यक्ति होती है, उस समय मूलाधार स्थित स्वयम्भूलिंग का साक्षात्कार होता है। अंगुष्ठ मात्र शुभ्रज्योति स्वरूप शिवलिङ्ग की साढ़े तीन चक्र लगाये हुए सदाशिव की शक्ति, सर्पिणी कुण्डलिनी का ज्योति स्वरूप साक्षात्कार होता है। करोड़ों बिजलियों के सदृश ज्योति चक्रभेदन करती है।

तडित्कोटि ज्योति द्युति

दलित षड्ग्रन्थि गहनम् ।

प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि,

सुधावृष्टि वपुषा ॥

उपरोक्त पद्धति का अनुभव, भारतीय वैदिक तान्त्रिक सिद्धान्त के अनुसार है। उस शिव लिंग के पास ही शिवशक्ति द्वय प्रसूत श्री गणेश जी सिद्धि ऋद्धि शक्तियों सहित साधक पर कृपा करते हैं। तब पश्चिम मार्ग रीढ़ की हड्डी के अन्दर ऊपर जाने के मार्ग

में प्रवेश होता है। इस चक्र में 'लं' बीज की ध्वनि होती है, जो पृथ्वी तत्व के परमाणुओं द्वारा आने वाली रुकावटों को दूर कर देती है। चक्र स्वरूप ऐसा प्रतीत होता है कि सूक्ष्म ज्ञान तन्तु चार भागों में चार दिशाओं में खुले हुए तेजस्वरूप हैं। मध्यकर्णिका पीतवर्ण की प्रतीत होती है। जिस से 'लं' शब्द की लम्बी ध्वनि हो रही है। पूर्व पंखड़ी से चतुर्दल कमल की दक्षिण पंखड़ी पर्यन्त क्रमशः 'वं शं षं सं' यह चार प्राण ध्वनियां सुनाई देती हैं। इस कमल की जागृति से गुदाचक्र में होने वाली कोई बीमारी कष्ट नहीं रहता। दुर्गन्ध दूषित पार्थिव परमाणुओं की शुद्धि हो जाती है। नीरोगता और सत्कामनाओं की पूर्ति होने लग जाती है। गणेश चक्र को छोड़ते समय सारी ध्वनियां ॐ में लीन हो जाती हैं। आनन्द से शरीर उछलने लगता है। परन्तु संयम से स्थिर हो जाता है। इस चक्र की जागृति से अन्नमय कोष पर विजय हो जाती है। अर्थात् अन्नमय कोष योग साधना में बाधक नहीं बनता। चक्रों की ध्वनियां मधुमक्खी की गुंजान सदृश होती हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र:—

ॐ कारावलम्बित समस्तप्राण और जीव चेतना चारों दिशा और विदिशाओं से एकत्रित होकर, ॐकार सहित जब ऊपर उठते हैं।" तब मूत्रेन्द्रिय के मूल आन्तरिक स्थान, रीढ़ की हड्डी के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी के अन्तर्गत सूक्ष्म स्थान है, उसमें प्रवेश हो जाता है। इसका नाम स्वाधिष्ठान चक्र है। इस स्थान पर शुभ्र वर्ण के तेजस तन्तु कमल पंखड़ी के समान ६ भागों में विभक्त हैं। मध्यकर्णिका में गायत्री ब्रह्मा, सावित्री दर्शन होते हैं। और सागर के समान जल तत्व के केन्द्र से "वं" बीज की ध्वनि हो रही है। इस ध्वनि से प्रतीत होता है कि अमृत सरोवर अवगाहन हो रहा है। पूर्वोत्तर क्रम से इन ६ पंखड़ियों से एक एक ध्वनि, क्रमशः "बं भं मं यं रं लं" यह भिन्न-भिन्न ध्वनियां हो रही हैं। इस केन्द्र पर इतना आनन्द आता है कि सहन करना कठिन हो जाता है शरीर उछलने लगता है। उस समय तीनों बन्ध न लगे हैं तो कामदेव गिरा सकते हैं। यह काम चक्र है। और आनन्द मय कोष का मूल केन्द्र है। इसको पार करना अति कठिन है इस चक्र को वही पार कर पाता है कि जो ध्यान में बैठते समय धारणा करले कि संसार और दिव्य ऐश्वर्य सब अनित्य हैं। मैं तो परमात्मा को आनन्दमय ज्योति में आज ही लीन हो जाना है। ऐसा परम वैराग्य युक्त योगी ही योगमार्ग में बेरोक टोक चल सकता है। इस चक्र के जागृत होने से रजवीर्य गत धातु दोष और उनसे होने वाली बीमारियों से छुटकारा हो जाता है। जननेन्द्रिय गत समस्त दोष दूर हो जाते हैं। जन्म जन्मान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं। वासनाओं की भी निवृत्ति हो जाती है। प्राणों की स्थिरता होने लग जाती है। जल तत्व की विकृति से होने वाली समस्त व्याधियां और मानसिक बाधायें निवृत्त हो जाती हैं। जननेन्द्रिय पर विजय हो

जाती है अब साधक यहाँ मोक्ष मार्ग का अधिकारी बन सकता है। अब गायत्री ब्रह्म के शुभाशीर्वाद से पूर्वार्जित अन्य कर्म साधना में बाधक नहीं बनते। ७ ध्वनियों के सहित प्राण और जीवचेतना प्रणवावलम्बित होकर ऊपर चढ़ते हैं। नाभि चक्र में मेरुदण्ड मध्यगत मणिपूर चक्र में पहुँचते हैं। पेट की ओर नाभि के नीचे साथ ही मणिकेन्द्र है। जिसमें एक चुल्लू भर रज वीर्य प्रतिक्षण भरा रहता है। यदि गाढ़ा हो तो क्षीण नहीं होता। पतला हो तो कामोत्पादक शब्द स्पर्श, रूप, रस गन्ध से पिघल कर स्थान छोड़ देता है। फिर मल मूत्र नाक मुख और पसीने के मार्ग से बाहिर निकल जाता है। योगासन, पथ्याहार करें। गर्म गर्म पदार्थ न खाना पीना। खटाई और रात्रि को व्यायाम, अधिक चलना आदि त्याग दें। दिन में सोना और रात्रि को अधिक जागना आदि त्याग दें, तो धातु स्थिर हो सकता है। धातु का मुख्य नियन्त्रण स्थान है सुषुम्णागत मणिपूर चक्र।

मणिपूर चक्र ही प्रत्येक प्राणि के शरीर का बीज कोष है। अपने उत्पत्तिस्थान, माता से जो खुराक गर्भ में मिलती है उसका नाभि चक्र ही केन्द्र है। बाद में नीचे ऊपर का शरीर बनता है। माता से अलग होते ही नाभिगत नाड़ी सूख जाती है। मुख से खुराक खाने पर भी सारी खुराक का तत्व नाभि में पहुँचता है। नाभि में बैठे हुए श्री विष्णु और उनकी वैष्णवी शक्ति सारे शरीर का पालन पोषण करते हैं। गगन मण्डल में जितने गोलक हैं। इन सबकी नाभि है ध्रुव मण्डल। ध्रुव ही सबको सन्तुलित रखता है। और शक्ति प्रदान कर रहा है किसी मानव शरीर की नाभि टल जाती है तो अनेकों बीमारियाँ और मानसिक व्यथायें घेर लेती हैं। नब्बे प्रतिशत नर नारी नाभि की विकृति से बीमार होते हैं। जानकारी न होने से शरीर भी त्याग देते हैं। दवाओं से आराम आता नहीं, जब तक नाभि को केन्द्रित न किया जाय। पेट को मलना बड़ा हानिकर है। योगासनों से नाभि केन्द्रित करनी चाहिये। नाभिविकार से ध्यान भी नहीं लगता इसीलिये विशेष लिखना पड़ा।

नाभिकेन्द्रित करने के उपाय योगासन:—

पद्मासन:—पद्मासन लगाकर बगल में दोनों हाथ पृथ्वी पर जमा कर शरीर को ऊपर उठावें। पेट ढीला छोड़ दें। घुटने पृथ्वी पर लगें। पिछला भाग उठा रहे। इसी प्रकार सात बार करें।

ऊर्ध्वोत्तान:—दोनों पैर मिला कर खड़े हो जावें। दोनों हाथों के अंगूठे आपस में नीचे ऊपर फँसाकर, हथेलियाँ तान कर, छाती में श्वांस भरते हुए, दोनों हाथ ऊपर सिर के पीछे सीधी आयु रखते हुए ले जावें। फिर हाथ नीचे लाते समय नाक से प्रश्वास निकाल देवें। इसी प्रकार सातबार करें।

कटि शक्ति वर्धक :—

कमर के पीछे अंगूठा अन्दर लेकर मुट्ठी बांध लेवें। दूसरे हाथ से कलाई कस कर, पकड़

लेवें दोनों पैर मिलाकर खड़े हो जावें। और श्वास नाक से भरते हुए पीछे मुड़ें। श्वास नाक से निकालते हुए सीधे खड़े हो जावें। इसी प्रकार सात बार करें। दोनों आसनों में धारणा ध्यान नाभि में रखें। फिर खड़े खड़े ही हल्का या तर गर्म घनी वस्तु खा लेवें। फिर पैर हिलावें अर्थात् इधरउधर जावें। प्रति दिन प्रत्येक व्यक्ति को प्रातः कुछ खाने से पूर्व यह आसन कर लेने चाहिये। इन से नाभि ठीक हो जायेगी। प्रतिदिन साधन करने से कभी नाभि टलेगी नहीं।

मणिपुर चक्रः—

नाभि केन्द्र के पश्चिम में मेरु दण्डगत सुषुम्ना मध्यगत मणिपुर चक्र में रक्त वर्ण की कर्णिका से अग्नितत्त्वोत्पादक "रं" बीज की ध्वनिनिरन्तर चल रही है। इस कमल की तैजस तन्तुमय पंखड़ियां दस है चारों ओर खुली है। इन से पश्यन्ती वाणी स्वरूप "डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं" यह दस ध्वनियां निरन्तर चल रही हैं। इस चक्र के खुलने से तैजस जठराग्नि के कारण होने वाली समस्त आधिव्याधिबीमारियों की निवृत्ति हो जाती है नाभि स्थिर रहती है। वीर्य रज स्थिर हो जाते है। अधिक समय करने से शरीर के अन्दर की नस अस्थि आदि सूक्ष्म तन्तु भी दीखने लग जाते हैं। परम प्रसन्नता चेतनता बढ़ जाती है। शरीर में हलकापन और तैजसतत्त्व झलक-ने लगता है। अब समस्त ध्वनियां और प्राण प्रणवावलम्बित होकर ऊपर उठकर मेरुदण्ड मध्यगत हृदय कमल में पहुंचते है।

हृदय कमलः—

प्रत्येक कमल के तन्तु पंखड़ियों के आकार में बन्द कमल के समान नीचे की ओर झुके रहते है। जब नीचे से सुषुम्नागत प्राण ऊपर आते है, तब यह तन्तु कमल पंखड़ियों के स्वरूप में, ऊपर की ओर खुलजाते है। हृदय कमल की तन्तु पंखड़ियां बारह है। मध्य-कर्णिका धूम्रवर्ण की है। इसके मध्य में "यं" वायुतत्त्व के बीज मन्त्र की ध्वनि निरन्तर निकल रही है। इसकी पंखड़ियों से पूर्वोत्तर क्रम से "कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं" क्रमशः निम्नांकितध्वनियां निकल रही है। यह जीवात्मा, जो अविद्या ग्रस्त है। उसके विश्राम का स्थान है। और माया विशिष्ठ चैतन्य ईश्वर का आभास अवलम्बन स्थान है। अर्थात् जीवात्मा अपने आपको ईश्वरार्पित कर सकता है, इसी स्थान पर। यद्यपि सांसारिक वासनायें चित्त में न हों तो ईश्वरीयानन्द इसी स्थान पर मिल सकता है। उप-निषदों में लिखा है :—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया,
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

अर्थात् इस वृक्ष पर, समान स्वरूप वाले, एक

साथ रहने वाले, परम स्नेही दो पक्षी बैठे हुए हैं। उनमें से एक अविद्यावश सांसारिक विषय-भोगों के जंजाल का सुस्वादु फल खा रहा है। और दुःख भी झेल रहा है। परन्तु दूसरा पक्षी मायाविशिष्ठ चैतन्य सर्वज्ञ ईश्वर केवल उसको देख रहा है। और क्षण प्रतिक्षण विषय ग्रस्त जीव पक्षी को अन्तः प्रेरणा दे रहा है कि, छोड़ इस सांसारिक विषय भोग को इस में जितना सुख ढूंढोगे उससे कई गुना अधिक दुःख झेलोगे। परन्तु जीवात्मा पक्षी उस ईश्वर की प्रेरणा को, इन्द्रियों में फंसे मन की प्रेरणा से टाल देता है। फिर दुःखों के बवंडरों में उलझता है फिर अन्तः प्रेरणा मिलती है। फिर टाल देता है। इसी प्रकार असंख्य जन्मों से चक्र चला हुआ है।

श्रीमद् भगवद् गीता में योगेश्वर श्रीकृष्णजी ने लिखा है :—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

अर्थात् :—हे अर्जुन सचेत हो जा। प्रत्येक भूत प्राणी के हृदय में ईश्वर का वास है। अपनी माया के द्वारा कठपुतलियों की नाईं सब को घुमा रहा है। माया पाश में बन्धे हुए जीव उसी प्रभु की कृपा से छूट सकते हैं।

वैदिक तत्त्वार्थ अप्रकाशित उपनिषद् :—

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां,
मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति,
विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥

अर्थात् :—हृदय कमल के परितः एक सौ एक चेतन तन्तु दिशा विदिशा में फैले हुए हैं। उनमें से सूक्ष्म विवेचन से (विस्तार न हो अतः) केवल एक का फल लिखते हैं, कि ऊपर ब्रह्म कमल सहस्रारबिन्दु की ओर जाने वाले तन्तु में जब मन चेतना और प्राण की गति होती है तब अमृत तत्त्व मिलता है। और प्राणोत्क्रमण वेला में भी ऊर्ध्वतन्तु में मन प्राण चेतना आ कर ब्रह्म तत्त्व में विलय हो जावें तो अमर हो जाता है। अर्थात् तीनों शरीर (१ स्थूल २ सूक्ष्म ३ कारण) इधर ही रह जाते हैं। वह मरता नहीं ब्रह्मलीन होता है। पुनः जन्म नहीं पाता। पुनर्जन्म उसी का होता है जो अज्ञान वश सूक्ष्म और कारण शरीर को साथ ले जाता है। वही मरता है। जो परम योगी ज्ञान पूर्वक सांसारिक वासनाओं सहित तीनों शरीरों की वासना यहीं छोड़ देता है वह योगी अजर अमर हो कर, हृदय कमल में ही ईश्वरीय ज्योति ब्रह्म प्रकाश की परम चेतना में, मिल कर, ब्रह्म सर्वात्मा स्वरूप हो जाता है। वह किसी लोक लोकान्तर में नहीं जाता। श्रीमद् भगवद् गीता में लिखा है :—

बहवो ज्ञान तपसा,
पूता मद् भावमागता।

प्रणवालम्बित प्राणध्वनियां हृदय कमल से ऊपर उठकर, कण्ठ के पश्चिम मेरुदण्ड मध्यगत विशुद्ध चक्र में पहुंचती हैं। इसकी मध्य कर्णिका, कर्बुर वर्ण की है। आकाश तत्त्वबीज, "हं" की ध्वनि मध्य भाग से निरन्तर चल रही है। सोलह पंखड़ियों से

क्रमशः निम्नांकित सोलह स्वरों की ध्वनियाँ हो रही हैं:—"अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं एं ऐं ओं औं अं अः"………… विशुद्ध चक्र, सोलह कला युक्त, मातृ शक्ति, सुधासिन्धु मध्यगत, मणिद्वीपावस्थित, चिन्तामणि मन्दिर निवासिनी, आदि शक्ति, सर्वेश्वरी, श्री भुवनेश्वरी भगवती का ब्रह्म शक्ति पीठ है। यहां अमृतकूप, सागर के समान अतोल होता है। प्रणवावलम्बित प्राणध्वनियों सहित जीवात्मा जब आदि माता की गोदी में पहुँच कर, अमृत पान करता है, तब समस्त जन्मों की क्षुधातृषा शान्त हो जाती है। नीरोगता, परमतृप्ति मिलती है। सिद्धयोगी इसमें विशेष संयम करते हैं। केवल अमृत का पान करते हैं। अब आदि माता, जीवात्मा को साथ लेकर, प्रणवावलम्बित प्राणध्वनियों सहित, ऊपर जाकर, मस्तक पश्चिमगत् आज्ञा चक्र में ईश्वर सिद्ध योगी परमसद्गुरुदेव जी के चरणों में तन्मय कर देती है।

आज्ञा चक्र के सूक्ष्म चेतन तन्तुओं के दो भागों से "हं क्षं" दो ध्वनियां निरन्तर चल रही हैं। यहां सद्गुरु मध्यकर्णिका में शक्ति युक्त विराज मान हैं। जीवात्मा को पंच महावाक्यों का उपदेश करते हैं। इस से प्रभावित जीवात्मा का अहं भाव क्षीण हो जाता है। ब्रह्म साक्षात्कार का अधिकारी बन जाता है। इस उपदेश को लिखा नहीं जाता है।

उसके आगे सहस्रार बिन्दु है, जिसका वर्णन करना या पढ़ना साधकों के लिये उपयुक्त नहीं। क्योंकि जैसा पढ़ा लिखा वैसी ही धारणा बन जाती है उचित, अनुभव नहीं होता। आज्ञाचक्र में संयम कर लेते सिद्धों के दिव्य दर्शन होते हैं। सहस्रार बिन्दु ब्रह्म बिल के ऊपर परमात्म प्रकाश स्वरूप है। इसके खुलने से जीवन्मुक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

यद्यपि नियमों की रचना सर्वोत्कृष्ट तत्वों को अपनाने के लिए हुई है तथापि यन्त्रवत् नियमों के पालन करने का नाम आध्यात्मिक जीवन नहीं है। आध्यात्मिक जीवन अनुभव और ज्ञान का विषय है। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है उस ज्ञान की उपलब्धि जो तमाम शाब्दिक व्याख्याओंसे परे है।

—मेहर बाबा

राजनीतिज्ञों को योग की आवश्यकता

[श्रीमती सरिता भारद्वाज एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत) बी. एड.]

जनतान्त्रिक शासन-पद्धति में देश और व्यक्ति का जीवन बनाना और बिगाड़ना सिद्धान्त रूप से तो जनता के हाथों में होता है ऐसा कहा जाता है परन्तु यथार्थ में कतिपय उन राजनीतिज्ञों के हाथ में होता है जिन की मनचाही नीतियां और योजनायें कानून का रूप लेकर जनता पर लागू की जाती हैं, और उनसे जनता को भेड़-बकरियों की तरह हांका जाता है। जनतान्त्रिक शासन-व्यवस्था में जहां अनेक अच्छाइयां हैं वहां एक सबसे बड़ी बुराई यह है कि देश का नेतृत्व प्राप्त करने के लिए उपयुक्त पात्रता और संस्कार की आवश्यकता नहीं समझी जाती। फलतः ऐसे-ऐसे सज्जन देश के कर्णधार बन जाते हैं जिनका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन बड़ा कालुष पूर्ण रहा होता है। उनसे देश के हित की क्या आशा की जा सकती है। यदि कदाचित् कुछ लोग अच्छे भी हुए तो सत्ता का प्रभुत्व पाकर उनमें भस्मासुरी संस्कार प्रबल हो उठते हैं, सम्पत्ति, प्रभुत्व हल्के पात्र को अविवेकी बना डालते हैं। वोट मांगने के समय जो अपने को दास कहते थे, मन्त्री पद ग्रहण करने पर वे अपने को इन्द्र से कम नहीं समझते और साधारण व्यक्ति को दर्शन देने और उससे बात करने में अपना अपमान समझते हैं। उनमें अस्मिता (अहंकार) का राक्षस निरन्तर वर्द्धमान रहता है। यदि ऐसे लोग अपने मानसिक सन्तुलन और प्रभुत्व को पचाने के लिए अपने मन का संस्कार नहीं करते तो वे एक ऐसे बालक की भांति विनष्ट हो जाते हैं जो मदमस्त होकर गाड़ी चलाता हो और स्वयं भी नष्ट हो तथा बैठने वालों को भी यमधाम पहुंचा दे।

मन की एकाग्रता के बिना दूरदर्शिता नहीं आ सकती, जो कि किसी भी सफल प्रशासक को परमावश्यक है। एकाग्रता बिना योग के सम्भव ही नहीं। एकाग्रता के बिना बुद्धि सूक्ष्म और पक्षपात रहित परम कल्याणी नहीं हो सकती। योग परायण व्यक्ति के जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अर्थ शुचिता, संतोष तथा आस्तिक भावना स्वतः आ जाती है। इन गुणों से समन्वित व्यक्ति ही देश का वास्तविक नेता बन सकता है। योगांग अनुष्ठान के बिना राजनीतिज्ञ कामिनी कांचन के चेरे न होंगे तो क्या होंगे। वे आप

गए औरहु घालहिं' के प्रतीक बन कर समाज के सामने गलत आदर्श देते हैं जो समाज को गलत दिशा की ओर गुमराह करने के कारण बनते हैं।

राजनीतिज्ञ को तो सच्चे अर्थों में जनता का सेवक होना चाहिए। सेवा-धर्म इतना आसान नहीं है कि हर अदने से अदना व्यक्ति भी मंत्री बनने के लिए आकाश-पाताल को मिला कर, धर्म-ईमान बेचकर प्रयत्न करे। सेवक के अन्दर दो गुण परमावश्यक हैं—अनासक्ति और अथक परिश्रम। सेवक सेवा-धर्म को अपना परम कर्त्तव्य समझता है, और उसके बदले में अधिकार को चाहना नहीं करता। जो अधिकार चाहता है वह बड़ा दीन-हीन मनो-बल वाला व्यक्ति होता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं:—

'कृपणा फल हेतवः ।'

योग वाशिष्ठ में राजनेताओं को निर्देश दिया गया है कि दैन्य नाश और कठिनाइयों से संघर्ष करने का संबल देने के लिए राज-विद्या अर्थात् राज-योग का ज्ञान आवश्यक है।

राजविद्या राजगुह्यम-
ध्यात्म ज्ञान मुत्तमम् ।
ज्ञात्वा राघव राजानः,
परानिर्दुःखता गताः ॥

—योग वाशिष्ठ २/११/१८

अपने चित्त को स्थिर करने के लिए योग का आश्रय परमावश्यक है। देश में संकट-कालीन स्थिति के समय योगनिष्ठ राजनीतिज्ञ समबुद्धि होकर मन को भय और भ्रम से दूर करते हुए देश की रक्षा और वृद्धि कर सकते हैं। जैसा कि गरुड़-पुराण में कहा है—

चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं,
चित्ते नष्टे धातवोयान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं,
स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति ॥

—गरुड़-पुराण १/११४/७५

अर्थात् धातुमय शरीर चित्त के वश में होता है। चित्त नष्ट होने पर शरीर भी नष्ट हो जाता है। इसलिए चित्त को हमेशा स्वस्थ रखना चाहिए क्योंकि स्वस्थ चित्त में ही रस, रक्त, ओज, दीप्ति, कान्ति, उत्साह, निर्भीकता आदि सम्भव हैं। गरुड़-पुराण में अन्यत्र कहा गया है कि राष्ट्र की वृद्धि प्रणव उपासना से और शासक की वृद्धि योग से होती है। इसलिए शासक को योग का आश्रय लेकर राष्ट्र का कल्याण करना चाहिए। यदि कदा-चित् राष्ट्र पर कोई विपत्ति आ जाय जैसे कि इस समय देश सब प्रकार के अभावों से ग्रसित हो रहा है उस समय राजनेता को हतोत्साहित न होना चाहिए बल्कि समत्व-योग के फल-स्वरूप सुख-दुख में समान भाव रखते हुए प्रसन्न रह कर जनता के कल्याण के कार्यों में

सचेष्ट बना रहना चाहिए। चाहे कोई उसकी स्तुति अथवा निन्दा करे, इसकी उसे कोई परवाह नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार की मनःस्थिति ध्यान, धारणा के बिना नहीं आ सकती। और न अहंकार के भयंकर राक्षस से उनको मुक्ति मिल सकती है। इसलिए अपना और देश का भला इसी में है कि राजनीतिज्ञ कहलाने वाले कुछ प्राणियों योगाग्नि में प्रवेश कर अपनी बुद्धि को शुद्ध करो जिससे सही निर्णय ले सको।

महाप्रभु से

[राघवेन्द्र तिवारी मु०पो० नयोरी कलाँ]
(ललितपुर)

मैं अमानुष
रौरवों जन्मा मेरा अस्तित्व
किन्तु सतयुग पर मेरा अधिकोश
भेषज, योग
पानी सा बिखरता आ रहा है
आज जैसे बाँसुरी से
कृष्ण फिर यमुना किनारे
गीत गाने आरहा है
किन्तु गीता के अमर श्लोक
पानी में धुले निखरे
मुझे क्या मिल सकेंगे
वेद जैसे पाठ जो खाली चले थे
ऋचाओं में मिल सकेंगे
चुप क्यों हो ?
आज मेरी मेखलाओं में बचा कुछ
क्रोध फिर फेनिल हुआ है
धूर्जटि।
तेरे किरीटि पर टंगा
चन्द्रमा धूमिल हुआ है

श्री भादुरी महाशय से भेंट

[श्री विजयसिंह, एम० एस सी पी० एच्डी० गोरखपुर]

सम्पूर्ण मानव जीवन उस नियन्ता की नियति से ही प्रभावित हुआ उत्थान एवं पतन तथा इनसे परे मोक्ष को प्राप्त होता रहता है। जब तक मानव स्वयं ही कर्मों का कर्त्ता समझता रहता है, सांसारिक प्रपंच न चाहते हुए भी उसके साथ हैं। इसके विपरीत संसार में रहता हुआ भी कोई-कोई मानव जिसने अहंकार को निर्बीज कर लिया है। कैवल्य के सुख को प्राप्त हुआ सन्त सहज ही है। ऐसे महापुरुषों के लिये उनके सापेक्ष देश काल की महत्ता समाप्त हो जाती है। बालक मुकुन्द पूर्व जन्म से ही योगमय जीवन व्यतीत किया हुआ था अतः उसे इस जीवन में प्रारम्भ से ही संतों का समागम येन-केन प्रकारेण प्राप्त होता रहता था। गत अंकों में, मुकुन्द जिन कई संतों से मिला उसका वर्णन किया जा चुका है। यहां एक योगी सन्त का जीवन जैसा मुकुन्द ने उनके सम्पर्क से जाना वर्णन किया जा रहा है।

मुकुन्द के बाल-मित्र उपेन्द्र मोहन चौधरी ने उनसे एक दिन कहा कि—क्या तुम कलकत्ते के उस सन्त के बारे में जानते हो जो कई फीट आकाश में ऊंचा आसन लगा सकते हैं। मुस्कराते हुए मुकुन्द ने कहा शायद तुम योगी भादुरी महाशय जो अपर सर्कुलर रोड पर रहते हैं के विषय में कह रहे हो। उपेन्द्र ने स्वीकृति में सर हिलाया। मुकुन्द ने उपेन्द्र से कहा-भाई मैंने उनमें कई ऊंची आध्यात्मिक स्थितियाँ देखी हैं। वे कई प्राणायामों में पूर्ण सिद्ध-हस्त हैं। जिनका वर्णन पातंजलि जी ने अष्टाङ्ग योग के अन्तर्गत किया है। एक बार श्री भादुरी महाशय ने हमारे समक्ष होभाक्रिका प्राणायाम इस तीव्रता से किया कि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस कमरे में सत्य रूप से आंधी चलने लगी हो। थोड़ी देर पश्चात् उनका गर्जना युक्त श्वास-प्रश्वास एकाएक समाप्त हो गया। कुछ देर वे उच्च आध्यात्मिक चेतना में स्थिर रहे, उस समय चारो ओर शान्ति का अविस्मरणीय प्रकाश छाया रहा। सामान्यतः वे अपना घर छोड़कर बाहर कहीं नहीं जाते। उपेन्द्र ने पूछा—भला वे कैसे वायु में गुरुत्वाकर्षण की शक्ति को झुठलाकर स्थित रहते हैं? मुकुन्द ने कहा—निश्चित प्राणायामों के अभ्यास द्वारा

योगी अत्यन्त सूक्ष्म भार वाला हो जाता है। पहले प्राणायाम के अभ्यास से योगी मेंढक की भाँति लघु भार के कारण उछलने लगते हैं। आगे चलकर अभ्यास की दृढ़ता से उनका आसन आकाश में उठने लगता है। यद्यपि ईश्वरीय प्रेमावेश में भी कुछ सन्तों को आकाश में उठा हुआ देखा गया है।

यहाँ थोड़ा भस्त्रिका प्राणायाम के स्वरूप को घेरण्ड संहिता के आधार पर समझ लेना ठीक होगा। इस प्राणायाम में लोहार की धौंकनी के समान जल्दी जल्दी पूरक तथा रेचक करना पड़ता है। इसके करने में एक विशिष्ट स्वर की आवाज होती है। ठीक तरह से पद्मासन लगाकर उग्रता पूर्वक जल्दी जल्दी पूरक तथा रेचक करना पड़ता है। इसमें पूरक को धीरे-धीरे दीर्घता तथा कोमलता पूर्वक किया जाता है किन्तु रेचक अति तीव्रता से किया जाता है भस्त्रिका कुम्भक हर मौसम में किया जा सकता है। यह त्रिदोष नाशक है। यह आरोग्य बढ़ाने वाला तथा शरीर की व्याधियों को नष्ट करने वाला कहा गया है। इसके अभ्यास से शीघ्र ही मन की एकाग्रता तथा कुण्डलनी जागृत होती है।

एक दिन मुकुन्द जब भादुरी महाशय के यहाँ गया उस समय वे पद्मासन में बैठे हुये थे मुकुन्द ने पूछा—महर्षि! मेरे अल्प ज्ञान में आप पहले योगी हैं जो घर छोड़ कर बाहर नहीं निकलते। महात्मा ने कहा—बेटे! कभी कभी ईश्वर महात्माओं को विचित्र परिस्थिति में पैदा करता है। हम लोगों को उसकी इच्छा को ही नियम रूप से स्वीकार कर लेना चाहिये थोड़े देर पश्चात् वे तथा मुकुन्द ध्यान में बैठ गये। एक घंटे पश्चात् बड़े ही मधुर स्वर में उन्होंने मुकुन्द को सम्बोधित करते हुए कहा—तुम घंटों शान्त मौन ढंग से ध्यान में आँखें बन्द करके बैठते हो परन्तु क्या तुमने अनुभूति जागृत करली है? वे मुकुन्द को याद दिला रहे थे कि ध्यान से भी बढ़कर आन्तरिक ईश्वर-प्रणिधान आवश्यक है। इसके बाद उन्होंने मुकुन्द को कुछ आम खाने के लिये दिया तथा विनोद करते हुए बोले—साधारण तथा लोगों की अभिरुचि जलयोग (भोजनग्रहण) की ओर हुआ करती है। ध्यानयोग की तरफ तो किसी किसी की ही अभिरुचि होती है। सन्त का यह विनोद मुकुन्द के मन में प्रवेश कर गया। वह बड़ी तेजी से हँसने लगा। महात्मा ने कहा विलक्षण मेला तुम्हारी हँसी है। भादुरी महाशय सर्वदा गम्भीर परन्तु मुख मण्डल पर एक विचित्र आभायुक्त मुस्कान से युक्त रहा करते थे। उनकी बड़ी कमल के सदृश आँखों में दिव्य हँसी की झलक झलकती रहती थी। एक बार उन्होंने मुकुन्द को दिखलाते हुए कहा—देखो! यह सब पत्र बहुत दूर अमेरिका से आये हुए हैं। मैं वहाँ की कुछ संस्थाओं से सम्बन्ध रखता हूँ। वे लोग योग की ओर आकर्षित हैं। वे भारत को कोलम्बस के ध्येय से भी अत्यधिक ऊँचे एवं नये ढंग से खोज कर रहे हैं। मुझे उनकी मदद करने में

प्रसन्नता है। क्योंकि योग सूर्य के प्रकाश की तरह सबके लिये है, जो इसके प्रति जिज्ञासु हैं। श्री भादुरी महाशय गौर पूर्वक मुकुन्द की ओर देखते हुए कह रहे थे कि-जो हमारे ऋषियों ने अतीत में मानव जीवन को षट्-विकारों की दासता से छुड़ाने के लिये योग रूपी उपाय सुलभ किया है इससे पाश्चात्य-जनों को वंचित रखना उचित नहीं है। क्योंकि क्या पूरब, क्या पश्चिम मानव तो मानव ही है, अतः आन्तरिक अनुभूति तो सबको योग अनुसरण करने पर होगा ही। मूल रूप से ये वार्ते मुकुन्द के भावी जीवन की भविष्यवाणी हो थी। आगे चल कर बालक मुकुन्द परम सद्गुरु की अहैतुकी कृपा को पाकर बिना साधना के ही पूर्ण योगविद हो गये तथा परम हंसावस्था में गुरु की प्रेरणा पाकर अमेरिका में जाकर योग का अद्भुत प्रचार किया जिस का प्रभाव आज भी लास एन्जिल्स में वर्तमान है। कभी जिज्ञासु बालक मुकुन्द के मन में एक प्रश्न उठा था। उसने भादुरी महाशय से कहा-महायोगी। मेरी इच्छा है कि योग पर एक उत्तम पुस्तक आप लिखें जिसके द्वारा विश्व का कल्याण हो सके। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि मेरे द्वारा कुछ शिष्य योग की साधना पा रहे हैं। वे तथा उनका जीवन ही जागृति एवं जीवित पुस्तक हो सकेगा। भादुरी महाशय सदैव कहा करते थे कि देखो विधान द्वारा व्यवस्थित हुआ सबका जीवन अधिक सुव्यवस्थित तथा बुद्धिमत्ता पूर्ण होता है वनस्पति जीवन क्रिया द्वारा आरक्षित भविष्य कई वर्षों बाद वह समय आ गया जबकि मुकुन्द परमहंस योगानन्दजी (मुकुन्द) अमेरिका प्रस्थान करने से पूर्व भादुरी महाशय के दर्शनार्थ गये। उस समय परम प्रसन्न होकर इस महान योगी ने कहा था कि-बेटे। अमेरिका जाओ। विजय तुम्हारे मस्तक पर लिखी है। सफलता तुमको अपने ध्येय में सहज ही प्राप्त है। वहां के भले लोग तुम्हारा हार्दिक स्वागत करेंगे। यह आशीष वचन परमहंस जी के लिये भविष्य में अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुआ।

भादुरी महाशय की योगनिष्ठा, उनका अपूर्व जीवन, सब कुछ मिलकर बालक मुकुन्द के, कोमल भाव जगत को अत्यधिक प्रभावित किया था। हठयोग की साधनाओं का बाह्य प्रभाव, आकाश में आसन का स्थिरत्व जो सहज ही भादुरी महाशय को प्राप्त था। यद्यपि आकाश में उड़ने वाले सन्तों का नाम तो भारतीय वांगमय में बहुतायत से मिलते हैं। इसी संदर्भ में यहां विदेश के इसाई मतावलम्बी दो सन्तों का भी करना सर्वथा उचित होगा क्योंकि ईश्वरीय प्रेम के उद्रेक से ये सन्त भी आकाश में उड़ने लग जाते थे। जिसे सत्रहवीं शताब्दी के अनेक लोगों ने प्रत्यक्ष देखा था। प्रथम,सन्त का नाम है सेन्ट जोसफ। यथार्थ रूप से वह सन्त सदैव अन्तर्मुखी रहा करते थे। इसी कारण सांसारिक कार्य कलापों की दृष्टि कोण से पागल की भांति व्यवहरित होते प्रतीत हुआ करते थे। यही तो योग का

मूल सिद्धान्त है। ये सन्त वास्तव में सांसारिक कर्त्तव्यों को निभा सकने में पूर्णरूपेण असमर्थ थे। बहुधा किसी पवित्र मूर्ति को देखते ही इनके अन्दर दीप्त उन्माद प्रकट होता था। फलः स्वरूप वे आकाश में उड़कर उस पवित्र मूर्ति के गले लग जाते थे। उस समय आकाश में प्रस्तर मूर्ति वत् यह सन्त एकाकार प्रतीत होने लगते थे। दूसरे सन्त का नाम टेरसा है। वे अविला नामक महान आत्मा थी। इनके ऊपर कई संस्थाओं की देख-रेख का उत्तरदायित्व था। ये भी प्रेमातिरेक में सदैव मग्न रहती हुयी आकाश में स्थिति को प्राप्त हो जाया करती थी। इस उड्डयन की प्रक्रिया को चाह कर भी वे रोक नहीं पाती थीं। आज भी इस सन्त देवी की काया स्पेन के आल्वा चर्च में रखी हुयी है।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि देशकाल एवं पात्रता, योगमय बना देने के लिये मानव को सहायक है। परन्तु परम जिज्ञासा तथा ईश्वर अनुराग के साथ कहीं साधक को देशकाल भी उपयुक्त मिल जाय तो योग की प्रगति में चार चांद लग जाते हैं। योग सार्वभौमिक विद्या है। अतः भारतीय योगियों ने अतीत में तथा आज वर्तमान में भी सदैव सजग रहकर सारे संसार को इस पराविद्या का दान किया और कर रहे हैं। पाठकों को विस्मरण नहीं होगा कि किस प्रकार से योगी सम्राट श्री महाप्रभु बाबाजी जो सदैव अमर सिद्ध शिष्यों के साथ हिमालय में है उनकी प्रेरणा से ही बालक मुकुन्द ने योग रहस्य का प्रचार आगे चलकर अमेरिका में परमहंस योगानन्द जी के रूप में किया।

आस्तिक संस्कार

ईश्वर को मानने वाला मनुष्य ईश्वर के भय से पाप नहीं करता और उस पर निर्भर हो जाता है। जिससे उसके हृदय में निर्भयता, धीरता और गम्भीरता आदि अनेक सद्गुण स्वयं ही आ जाते हैं। ईश्वर चिन्तन से अनायास ही सारे दुर्गुण, दुराचार और पापों का नाश होकर उसके हृदय में सद्गुण सदाचार आ जाते हैं। परम शान्ति और परम आनन्द की प्राप्ति होकर अन्त में उसे उत्तम से उत्तम गति मिलती है। ये ही संस्कार आस्तिक कहे जाते हैं।

—श्री रवि किशोर

श्री कबीर संत, सिद्ध एवं सतगुरु

[श्री केशव उपाध्याय 'अवर अभियन्ता]

(विद्युत प्रेषण निर्माण खण्ड गोरखपुर)

महात्मा कबीर की अलौकिकता पूर्ण जीवन गाथा की जब-तब चर्चायें सुनने को मिलती रहती हैं। यद्यपि गत ५०० वर्षों का भारतीय इतिहास दासता से भरा पड़ा है। परन्तु इसी काल में भक्त युग का भी श्री गणेश हुआ। जिसमें संत तुलसी, सूर, मीरा, रैदास, नानक, कबीर इत्यादि इत्यादि संतों का नाम अग्रगण्य है। श्री कबीर जहाँ साहित्य के दृष्टिकोण से महान कवि हैं वहाँ आध्यात्मिक दृष्टिकोण वालों के लिये जटिल पुरुष प्रतीत होते हैं। इसका प्रमुख कारण मात्र उनका लौकिक व्यवहार में भी अलौकिकता का समावेश करना ही कहा जा सकता है। जन्म से लीलावसान तक कबीर रहस्यमय बने रहे। इनकी वाणी अत्यन्त रहस्यमयी है। अनुभव गम्य साधकों को ही इनके अन्तः स्वरूप का थोड़ा ज्ञान प्राप्त होता है। प्रस्तुत लेख में श्री कबीर के बारे में उनकी साधना एवं सिद्धि को ही प्रमुख विषय बनाया गया है।

एक प्रख्यात योगी परमहंस योगानन्द जी ने अपने बहुचर्चित "योगी की आत्मकथा" नामक पुस्तक में श्रीकबीर को आध्यात्मिक ज्योति प्राप्ति का कारण अपने दादा गुरु परम प्रभु श्री बाबा जी को माना है। ये अनादि सिद्ध परमप्रभु श्री बाबा जी महापुरुषों एवं परम योगियों द्वारा ठीक-ठीक महाप्रभु श्री रामलाल जी ही बताये गये हैं जो कालातीत, त्रैगुण रहित, परम करुणा के आदि स्रोत हैं। अपने सहृदय पाठकों को इस लेख के निमित्त से "श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी व उनके ध्यानानुभव" जो कि परमोद्धार श्री सद्गुरुदेव भगवान जी द्वारा लिखित है के एक अंश का यहाँ स्मरण संक्षिप्त रूप से कराना उचित होगा। क्योंकि उस अंश से श्री कबीर जी की योग परायणता के साथ ही योग साधन पद्धति का सहज ज्ञान भी हो जावेगा।

एक बार योगिराज श्री गोपालानन्द जी एक पुस्तक कबीर साहब पर लिखी हुयी पढ़ रहे थे, कि एक दोहे ने स्वामी जी को एक नये चिन्तन का मोड़ दिया। दोहा था—

कहता हूँ, कह जात हूँ,
कहूँ बजाकर ढोल।
स्वासा खाली जात है,
तीने लोक का मोल॥

इसे पढ़ स्वामी जी तुरन्त ध्यानस्थ हो श्री प्रभुजी (आनन्द कन्द योगयोगेश्वर श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज) का स्मरण करने लगे। श्री महाप्रभुजी के दर्शन प्राप्त होने पर उन्होंने यह विधि पूछी जिससे एक भी श्वास खाली नहीं जाता। दूसरों को सर्वस्व मान देने वाले दयानिधि जी ने कहा इसका समाधान कबीर साहब से ही कराये देते हैं। इतना कहते ही स्वामी जी को कबीर जी के दर्शन हुये। कबीरजी ने श्री महाप्रभुजी को साष्टांग प्रणाम किया। स्वामी जी ने अपना मन्तव्य रक्खा। श्री कबीर जी ने स्वामी जी को कहा कि प्रथम गुरु की चैतन्य मूर्ति का ध्यान हृदय में करना चाहिये। पुनः श्वास-प्रश्वास भी उन्हीं के समझते हुये उन् पर ध्यान करना चाहिये। इस साधन से सर्वानन्द होता है। इसका अधिकारी वह हो सकता है जिसके मन में गुरु की धारणा ईश्वर से भी अधिक हो। स्वामी जी ने प्रत्यक्ष देखा कि इस प्राणायाम की क्रिया में श्री कबीर जी के श्वास-प्रश्वास में श्री रामानन्द जी की मूर्ति आती-जाती है।

इस घटना से संत कबीर जी की श्रेष्ठ निधि पर प्रकाश पड़ता है। अब देखें इस संत की जीवन झांकी—

जन्म कथा—

मुसलमानों के विलासता पूर्ण जीवन का भारत में हिन्दुओं पर आज से लगभग ५०० वर्ष पूर्व बहुत ही विनाशक प्रभाव था। उस काल में अनेक संतों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने सनातन धर्म की ध्वजा को पुनः मजबूत बना दिया था। काशी में परम वैष्णव श्री रामानन्द जी का अध्यात्म प्रकाश फैला हुआ था। एक बार उनका एक प्रिय शिष्य जो लहर तारा तालाब के निकट से गुजर रहा था, देखा कि परम दिव्य ज्योति आकाश से नीचे धरा की ओर आ रही है। जब इस घटना को उन्होंने अपने गुरुदेव को बताया तब श्री रामानन्द जी ने कहा कि एक दिव्य आत्मा का आज जन्म हुआ है जो कुछ ही दिनों में संसारी जनों को अध्यात्म राज्य में पहुँचाने वाली सशक्त शक्ति साबित होगी। इधर नीरू एवं नीमा नामक जुलाहा जुलाहिन जो नव दम्पति थे कहीं से आते समय प्यास से पीड़ित होकर लहरतारा तालाब पर पहुँचे। उन दोनों ने एक अलौकिक बालक को कमल के ऊपर लेटा खेलता हुआ देखा। उसे देखते ही उनके मन में अकारण प्रेम पैदा हो गया। नीमा उस बालक को प्राप्त कर ममता पूर्ण दृष्टि से देखती हुयी नीरू से बोली कि इसे अपने पुत्र रूप में हमें ग्रहण करना चाहिये। परन्तु नीरू लोकापवाद से डर कर कुछ इधर-उधर करने लगा। तब कहते हैं कि स्वयं उस दिव्य बालक ने एक दोहे में कहा कि—तुम दोनों पूर्व जन्म के ब्राह्मण-ब्राह्मणी हो। निम्न कर्म के कारण इस समय तुम्हारी यह अवस्था है। मैं तुम दोनों को स्वीकार करता हूं जिससे तुम अन्त में मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे।

अन्त में बालक नीरू-नीमा के स्नेह एवं ममता का भाजन बना। दुखियों, संतों की सेवा कबीर के बाल्यकाल में सहज दृष्टि गोचर होती थी। निर्भीकता सत्य परायणता तो कबीर जी की वाणी में सहज उपलब्ध रही कबीरजी के नामकरण के समय घटी अलौकिक घटना से मुसलमान काजियों में एक विचित्र घबड़ाहट पैदा हो गयी थी। काजी ने जब कुरान खोल नाम ढूंढा तो उसे केवल चार ही नाम मिले कबीर, अकबर, कीबा और किबारिया। जिनका अर्थभाव महानतम् होता है तथा ईश्वर के विशेषण से सम्बन्धित शब्द हैं। काजी ने आश्चर्य चकित होकर बार-बार कुरान खोला और बन्द किया परन्तु उसे उन चार नामों के अलावा कोई और नाम कुरान में दिखायी ही नहीं पड़ा। मानो कुरान इन्हीं चार नामों से भरा पड़ा है। काजी इस घटना से घबड़ाकर नीरू से बोला कि इस नमालक लड़के को कत्ल कर दो। काजी ने तेज चक्कू बच्चे के पेट में घुसेड़ दिया परन्तु आश्चर्य खून का एक भी बूंद नहीं निकला। लड़का पूर्ण सुरक्षित था। इस घटना से नीरू बड़ा भयभीत हो उठा। तब बालक कबीर ने कहा कि मैं हाड़ मांस का पैदा नहीं हुआ था मैं तो शुद्ध प्रकाश से उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार बालक कबीर कबीर हुए।

सद्गुरु प्राप्ति—

किशोर कबीर का मन अकारण ही सन्त-सेवा परायण था। उन्हें सम्प्रदायिकता से कुछ भी मतलब नहीं था। अतः वे स्वाभाविक रूप से मुसलमान के घर में मुसलमान बालक की तरह रहते हुये भी हरि, राम, गोविन्द इत्यादि पवित्र नामों का प्रेमपूर्वक उच्चारण किया करते थे। इस बात से मुसलमान उनसे द्वेष रखने लगे। आगे वे तिलक एवं जनेऊ भी धारण करने लगे। किसी हिन्दू ने उनसे कहा कि तिलक एवं सूत धारण करने से ही कोई परमगति प्राप्त नहीं करता निगुरा की गति नहीं मिलती। बात किशोर कबीर के मन में बैठा गयी। कबीर ने सोचा कि अब कैसे सन्त शिरोमणि रामानन्द जी का शिष्य बन सकूंगा क्योंकि वे कदापि एक मुसलमान को अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं करेंगे। मेधावी श्री कबीर ने एक युक्ति सोची, स्वामी रामानन्द जी नित्य प्रातः चार बजे भीड़-भाड़ से बचकर गंगा स्नान करने जाया करते थे। एक दिन कबीर घाट की सीढ़ियों पर आकर लेट गये। उधर प्रातः जब चार बजे गंगा स्नानार्थ स्वामीजी घाट से उतर रहे थे उनके खड़ाऊं की चोट कबीर के मस्तक में लगी। कबीर जोरों से रो पड़े। स्वामी जी उस धुंधले प्रकाश के वातावरण में उस अजनबी बालक के मस्तक को सहलाते हुये बोले:—बेटा रोओ मत, राम-राम कहो! कबीर ने तुरन्त रोना बन्द कर बोले, "गुरुजी, क्या मैं राम-राम कह सकता हूं?" स्वामी रामानन्द जी बोले, "हां बेटा, राम-राम कहो।" कबीर गुरु प्रदत्त राम नाम

उच्चारण किया। घटना आयी और गयी।
इधर कबीर ने हल्ला मचाना शुरू कर दिया।
वे प्रसिद्ध सन्त स्वामी रामानन्द जी का शिष्य
है। लोग इस बात का समाधान करने जब
स्वामी जी के पास पहुँचे तो पहले उन्होंने अपनी
असम्मति प्रगट की परन्तु प्रत्यक्ष कबीर
द्वारा उस दिन का घटना की पुनरावृत्ति कथन
सुनकर आभ्यान्तरिक रूप से प्रसन्न होकर
स्वामीजी ने कबीर को शिष्य स्वीकार लिया।
यह हुई विलक्षण दीक्षा की विधि—

अलौकिक परिवार—

एक बार कबीर गंगा के उस पार पाँच सन्तों
के साथ भ्रमण करते हुये एक वन में पहुँचे।
उस वन में वे लोग एक कुटिया पर पहुँचे जहाँ
एक युवती निवास करती थी। वह युवती
इन छः सन्तों को आता हुआ देख छः पात्रों में
दूध ले आयी। तब कबीर ने उससे कहा कि
एक पात्र में और दूध ले आओ, क्योंकि एक
सन्त अभी गंगा पार कर इधर ही आ रहे हैं।
कथन के कुछ देर बाद सचमुच एक सन्त और
आये। कबीर की सर्वज्ञता से प्रभावित होकर
उस युवती ने उनका नाम पूछा। उन्होंने उत्तर
दिया कबीर। तब उनकी जाति पूछी। इसके
उत्तर में भी उन्होंने कहा कबीर। इस प्रकार
भाँति-भाँति प्रश्न करने पर भी सबका उत्तर
कबीर ने 'कबीर' ही दिया। युवती कबीर के
चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम करके बोली
आप ही हमारे अभिन्न दाता गुरु हैं। इस

युवती का नाम लोई था। ऐसा कहा जाता है
कि पूर्व इस वन में एक सिद्ध महात्मा रहते थे
एक दिन गंगा स्नान करते समय उन्हें लोई में
लिपटी, छोटी, बहती बालिका मिली। उसे
जीवन प्रदान कर लालन पालन महात्मा ने
किया। बहुत काल बाद देहावसान के समय
उन्होंने लोई युवती से कहा:—बेटी मेरे अवसान
के पश्चात् कुछ ही दिनों बाद तुझे तेरे दिव्य
गुरु मिल जायेंगे। लोई द्वारा पहचान पूछने पर
उन्होंने कहा कि जो पुरुष अपने हर परिचय
प्रश्न पर एक ही शब्द से उत्तर दे उसे तू
अपना गुरु जानना। इस भाँति कबीर को
परख पाकर लोई उनकी शिष्या बनी।

इसी भाँति जब कबीर की अलौकिकता एवं
अध्यात्म प्रकाश चारों ओर फैल चुका था।
उस समय मुसलमान बादशाहों से सम्मानित
एक मौलवी तकी हो चुके हैं। उनके मन में
कबीर के प्रति ईर्ष्या सम्मिलित सम्मान था।
एक बार कबीर और वे नदी तट पर सैर कर
रहे थे। एकाएक तकी ने नदी में बह रहे एक
बालक की लाश को बहते हुए देख कबीर को
सम्बोधित कर कहा:—"क्या आप इसे जिला
भी सकते हैं?" सिद्धों के मानस तरंग की
लहरों का भेद किसे क्या पता! कबीर ने
लाश को आज्ञा दी मेरे पास आ। आश्चर्य!
प्रकृति के सारे सिद्धान्तों को तोड़ बहते हुए
बालक की लाश नदी के तट पर खड़े कबीर
के चरणों में आ गयी। श्री कबीर सदगुरुतत्त्व

से पूर्ण रूपेण प्रभावित थे। अतः उनके उठ, कहते ही बालक जीवित हो उठा। इस अलौकिकता को देख तकीने हैरान होकर कहा, यह तो कमाल है। आगे यही बालक कबीर के संरक्षण में रहकर कमाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी भांति एक दूसरी घटना में एक मृत लड़की को कबीर जी द्वारा जीवन-दान देने पर उसे कमाली नाम से जाना गया। इतिहासकारों ने इन्हें ही कबीर के पुत्र-पुत्री रूप में माना है। इन घटनाओं से श्री कबीर की कालजयता एवं काल पर हुकूमत करने का सहज ही एहसास हो जाता है। और काल से परे ही का नाम सद्गुरु है।

साधना—

श्री कबीर की अलौकिक वाणियों का संग्रह बीजक ग्रंथ के नाम से विख्यात है। श्री कबीर बाह्य शिक्षा प्रणाली से शून्य थे। पढ़ना, लिखना उन्हें कुछ भी नहीं आता था। परन्तु अन्तर्जगत की पढ़ाई विद्या (योग) के पूरे मालिक या ज्ञाता थे। कबीर के रहस्यमय कथन आज साहित्य जगत में शोध के विषय बन चुके हैं। बीजक के दोहों में श्री कबीर ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'मैंने चार युगों से कभी कलम, दवात, कागज नहीं छुआ परन्तु बोधमय ज्ञान मैंने सदैव अपने मुख से दिया है। आगे पुनः वे कहते हैं कि मेरी वाणी पूर्व की है इसे वही ठीक-ठीक समझ सकेगा जो और भी पूर्व (आदि) का होगा। पूर्व की भाषा रहस्य बोध युक्त है। आगे और बोधगम्य रूप से इशारा करते हुये कहते हैं कि "पहले मैं समझता था कि पढ़ना अच्छा है परन्तु अब मैं कहता हूँ कि पढ़ने से सीखना अच्छा योग है।" इन कथनों से स्पष्ट पता चलता है कि रूहानी पढ़ाई (योग) जिसे जानने से सब कुछ जान लिया जाता है इस विचार की पुष्टि श्री कबीर जी ने अपने अनुभव से की है।

श्री कबीर जी की साधना पद्धति में स्पष्ट रूप से नाद-योग का वर्णन मिलता है। उनके पदों एवं दोहों में रहस्यात्मक वाणी के प्रयोग द्वारा नादयोग की विलक्षण अनुभूतियों का वर्णन मिलता है। यह बात तो निर्विवाद सत्य है कि योग की प्रक्रिया साधक के अन्तर जगत में सद्गुरु कृपा से ही प्रकट हुआ करती है। इसी हेतु अनेकों पदों द्वारा श्री कबीर स्वयं सद्गुरु तत्व की उपासना करते हुए दिखाई पड़ते हैं। यही नहीं अपितु सद्गुरु तत्व को उन्होंने ईश तत्व से भी बड़ा समझा है। बीजक में एक जगह कबीर ने कहा है कि सद्गुरु वाणी की बौछार ने हमें पूर्णता की प्राप्ति करा दी। पहले के सारे संस्कार स्वयं शान्त हो गये। पुराना कबीर के मर जाने पर गुरुकृपा से अब नया कबीर पैदा हो गया। शब्द योग के अर्वाचीन मन्त्रों के अनुभव विस्तार पूर्वक कबीर जी के अनुभवों से मिलते हुए हैं। श्री कबीर की अन्तर्मुखी साधना का श्रेय जहाँ शब्दयोग की प्राप्ति है वहाँ श्री कबीर की गुरुभक्ति, साधना की पराकाष्ठा का भी द्योतक है तभी तो श्री कबीर जी ने कहा है :—

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े,
काको लागूं पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की,
जिन्ह गोविन्द दियो लखाय ॥"

सद्गुरु चरण कमलों पर न्यौछावर होने वाले श्री कबीर का मन सदैव जीवन के परम पुरुषार्थ की ओर लगा हुआ प्रतीत होता है। दर्शों को उद्बोधित करते हुए परम विरक्त श्रीकबीर जी की वाणी है :—

"चलती चक्की देख कर,
दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में,
साबित बचा न कोय ॥"

इन सूक्ष्म परिणामों को वैराग्य चित्त से श्री कबीर ने देखकर जीवन एवं मृत्यु की सीमा को ठीक ठीक परखा है। तब कहीं इनसे ऊपर उठ, अनन्त जगत की झलकियों का रसास्वादन करते हुये श्री कबीर समाधि-जन्य महा-आनन्द का वर्णन कुछ इस प्रकार से करते हैं :—

"उठा बगूला प्रेम का,
तिनका उड़ा आकाश ।
तिनका-तिनका से मिला,
तिनका तिनके पास ॥"

—०—

ॐ कुछ यौगिक परिभाषायें ॐ

शब्दादीनां च तन्मात्रं यावत्कर्णादिषु स्थितम् ।
तावदेवं स्मृतं ध्यानं समाधिः स्यादतः परम् ।

ध्यानावस्था में स्थिर रहते योगी के कर्णादि इन्द्रियों में शब्दादि विषयों का सूक्ष्म भाग भी जब तक प्राप्त होता है तभी तक ध्यानावस्था कहलाती है। जब आत्मा में पंचेन्द्रिय वृत्ति लीन हो जाय तब आत्मा में अर्थमात्र का भान रहने वाली अवस्था समाधि कहलाती है।

धारणा पञ्च नाडीभि ध्यानं च षष्टि नाडीभिः ।
दिन द्वादशकेन स्यात्समाधि प्राण संयमात् ॥

प्राण वायु के व्यापार रोकने से पांच घटी पर्यन्त धारणा कहलाती है। ऐसे ही ६० घटी से ध्यान और बारह अहोरात्र पर्यन्त प्राणवायु का निरन्तर रोकना ही समाधि कहलाती है।

यत्सर्वं द्वन्द्वयो रैक्यं जीवात्म परमात्मनो : ।
समस्त नष्ट संकल्प समाधि साभिधीयते ॥

भूख प्यास शीत उष्ण राग द्वन्द्व कहलाते हैं। इनसे पीड़ा न होने तथा इनसे उद्वेग न होने का जो एकत्व है अर्थात् जीवात्मा परमात्मा का कारण मात्र रूप से एकता जाने। समस्त संकल्प विकल्पों का दूर होना ही समाधि कहलाती है।

श्री स्कन्दपुराण से :—

योगेश्वर रैक्व जी

[प्रेषक श्री मानिक चन्द, अमर वैश्य,]

—※※※—

महर्षि रैक्व गन्धमादन पर्वत पर रहकर अत्यन्त दुष्कर तपस्या करते थे। वे जन्म से ही पंगु थे। अतः गन्ध मादन पर्वत पर जो-जो तीर्थ हैं, वे उन्हीं की यात्रा करते थे। क्योंकि वे सब तीर्थ समीपवर्ती थे। पैदल न चल सकने के कारण वे गाड़ी से ही उन तीर्थों की यात्रा करते थे। इसलिए गाड़ी वाले रैक्व के नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई। उन्होंने तपस्या से अपना शरीर सुखा डाला था। उनके उस शरीर में खाज हो गयी थी, जिसे वे दिन-रात खुजलाते थे।

एक दिन उनके मन में ऐसा विचार हुआ कि मैं यमुना, गंगा और गया इन तीनों पवित्र तीर्थों में स्नान करूँ, परन्तु मैं जन्म से ही पंगु हूँ, अतः मेरे लिए वहाँ का स्नान दुर्लभ है। गाड़ी से इतनी दूर की यात्रा नहीं की जा सकती। तब इस समय मैं क्या करूँ। इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए महाबुद्धिमान रैक्व ने तीनों तीर्थों में स्नान करने के संबन्ध में अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया। उन्होंने सोचा—मेरा तपोबल दुर्धर्ष एवं असह्य है उसी के द्वारा मैं यहाँ उन तीर्थों का आवाहन करूँगा। मन ही मन ऐसा निश्चय करके, वे पूर्वाभिमुख बैठे, मन-इन्द्रियों को संयम में रखकर तीन बार आचमन किया और एक क्षण तक ध्यान में लगे रहे। उनके मन्त्र के प्रभाव से महानदी यमुना, गङ्गा और पापनाशिनी गया—तीनों भूमि फोड़कर सहसा पाताल से प्रकट हुईं और मानव शरीर धारण करके गाड़ी वाले रैक्व के समीप आ उन्हें प्रसन्न करती हुई प्रसन्नता पूर्वक बोलीं—'रैक्व! तुम्हारा कल्याण हो। इस ध्यान से निवृत्त होओ। तुम्हारे मन्त्र से आकृष्ट हो हम तीनों यहाँ उपस्थित हुई हैं।'

उनका यह वचन सुनकर महामुनि रैक्व ध्यान से निवृत्त हुए और उन्हें अपने सामने उपस्थित देखा। तब उन्होंने ने उन तीनों का पूजन करके उसी स्थान पर उनसे निवास करने के लिए प्रार्थना की। इस प्रकार रैक्व मुनि अपने मंत्र द्वारा आकर्षित किये हुए उन तीनों तीर्थों में स्नान करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

इसी समय भूतल पर महाराज जानश्रुति राज्य करते थे। वे राजर्षि पुत्र के पौत्र थे और एक मात्र धर्म के आचरण में ही संलग्न रहते थे। याचकों को श्रद्धापूर्वक अन्न आदि देते थे। अतः मुनि लोग उन्हें 'श्रद्धादेय' कहते थे। उस धर्मात्मा दानी राजा के ऊपर देवर्षि बहुत संतुष्ट हुए। उन सब के मन में राजा के ऊपर कृपा करने की इच्छा हुई। उसी समय देवर्षि गण 'हंस' का रूप धारण करके एक पंक्ति में आकाश मार्ग से उड़ते हुए आये और राजा के ऊपर हो कर जाने लगे। उस समय बड़े वेग से उड़ते हुए एक हंस ने आगे जाने वाले हंस को संबोधित करके राजा को सुनाते हुए उपहास पूर्वक कहा—'भल्लाक्ष! अरे ओ भल्लाक्ष!! क्या आगे-आगे जाता हुआ तू अन्धों की नाई देखता नहीं है कि आगे पूजनीय राजा जानश्रुति विराजमान है? यदि तू उन राजर्षि को लाँघकर ऊपर जायगा तो उनका तेज इस समय तुझे जला कर भस्म कर डालेगा। ऐसा कहते हुए उस हंस को आगे जाने वाले हंसने रुक कर उत्तर दिया—'अहो! तुम तो बड़े ज्ञानी हो, विद्वानों के द्वारा भी प्रशंसनीय हो तथापि इस तुच्छ मनुष्य की इतनी प्रशंसा क्यों करते हो? यह धर्मों के रहस्य को नहीं जानता, जैसा कि ब्राह्मणों में श्रेष्ठ गाड़ी वाले रैक्व मुनि जानते हैं। इस राजा का तेज उनके समान नहीं है। योगी रैक्व के पुण्य-राशियों की इयत्ता (संख्या) नहीं हो सकती। पृथ्वी के धूलिकण गिने जा सकते हैं, आकाश के नक्षत्र भी गणना में आ सकते हैं, परन्तु रैक्व के महासेतु सदृश पुण्य पुंजों की गणना नहीं की जा सकती है। राजा जानश्रुति में तो वैसा धर्म ही नहीं है, फिर वह ज्ञान-वैभव कहाँ से हो सकता है। अतः इस तुच्छ मनुष्य की चर्चा छोड़कर उस गाड़ी वाले रैक्व मुनि की प्रशंसा करो। उन्होंने जन्म से पंगु होकर भी स्नान करने की इच्छा से मन्त्र द्वारा यमुना गंगा एवं गया को भी अपने आश्रम के समीप बुला लिया है।

आगे जाने वाला हंस जब ऐसा कहकर चुप हो गया, तब वे हंस रूपधारी देवर्षि पुनः ब्रह्मलोक को चले गये। तदनन्तर पौत्रायण राजा जानश्रुति रैक्व मुनि को उन्नति की सीमा पर पहुँचे हुए सुनकर बहुत उदास हो गये। और बारम्बार लम्बी सांस खींचते हुए विचार करने लगे—'उस हंस ने रैक्व को ऊँचा बताते हुए मुझे तुच्छ कहा था। अहो! रैक्व की कैसी महिमा है? अब मैं संसार तथा समूचे राज्य को छोड़कर गाड़ी वाले महात्मा रैक्व की शरण में जाता हूँ। वे कृपानिधान मुनि अपनी शरण में आये हुए मुझे अपनाकर आत्म-ज्ञान का उपदेश देंगे। रात्रि बीतने पर महाराज जानश्रुति ने सारथी को बुलाकर कहा—'सूत! तुम शीघ्रगामी रथ पर आरूढ़ हो शीघ्र जाओ और महर्षियों के आश्रमों, पवित्र वनों, एकान्त प्रदेशों, सत्पुरुषों के निवास स्थानों, तीर्थों नदी तटों तथा अन्यान्य स्थानों में जहाँ मुनीश्वर लोग रहते हैं योगीश्वर रैक्व का पता

मगाओ। वे जन्म से पंगु हैं, गाड़ी पर बैठे रहते हैं, सब धर्मों के एक मात्र आश्रय हैं और ब्रह्मज्ञान की निधि हैं। मेरी प्रसन्नता के लिए उनका शीघ्र अन्वेषण करके पुनः मेरे पास लौट आओ!

'बहुत अच्छा' कहकर सारथी वेगवान् रथ पर बैठकर नगर से बाहर निकला। उसने ब्रह्मज्ञानी रैक्व की सर्वत्र खोज की। अनेकों स्थानों में ढूंढने के पश्चात् वह क्रमशः महर्षियों से भरे हुए गन्धमादन पर्वत पर गया। वहां खोजते-खोजते उसने मुनीश्वर रैक्व को देखा, जो गाड़ी पर बैठ कर अपनी खाज खुजला रहे थे। वे कलारहित अद्वैत ब्रह्म के चिन्तन में संलग्न थे। गाड़ी सहित उस महामुनि को देख कर सारथी ने पहचान लिया कि यही रैक्व हैं। तब उनके पास जाकर प्रणाम किया और उनके समीप बैठ कर विनय पूर्वक पूछा—'ब्रह्मन्! क्या आप ही गाड़ी वाले रैक्व नाम से विख्यात हैं? मुनि बोले-हां मैं ही गाड़ी वाला रैक्व हूं। मुनि का यह वचन सुन कर सारथी गन्धमादन पर्वत से लौटा और राजा के पास पहुंच कर उसने सब समाचार निवेदन किया। तब राजा जानश्रुति छै सौ गौएं, धन और स्वर्णमुद्राओं का भार और खच्चरियों से जुता हुआ रथ अपने साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक रैक्व मुनि के समीप चले। वहां पहुंच कर राजा ने प्रार्थना करते हुए मुनि रैक्व से निवेदन किया-'भगवान्! मेरी दी हुई ये सब वस्तुयें स्वीकार कीजिये। इन सबको लेकर मेरे लिए अद्वैत ब्रह्मज्ञान का उपदेश कीजिए।' तब गाड़ी वाले रैक्व ने राजा जानश्रुति को इस प्रकार उत्तर दिया—राजन्! ये गौयें यह सोने का भार और यह रथ सब तुम्हारे ही पास रहें, मैं तो बहुत कल्पों तक जीवित रहने वाला हूं। इस धन के द्वारा मेरा कौन सा लाभ होगा!

रैक्व का यह वचन सुनकर जानश्रुति ने कहा-ब्रह्मन्! आप के द्वारा उपदेश किये जाने वाले ब्रह्मज्ञान का मूल्य नहीं है। आप ये गायें धन और रथ ग्रहण करें या न करें, किन्तु मुझे निष्कल अद्वैत ब्रह्मज्ञान का उपदेश अवश्य दें।

रैक्व जी बोले—जिसका संसार से वैराग्य हो और जिसके पुण्य-पाप रूप प्रारब्ध का विनाश हो जाय, वही ज्ञान के उपदेश का भागी है। यद्यपि तुम्हें संसार से वैराग्य हो गया है। तथापि अभी तुम्हारे पुण्य-पापों का विनाश नहीं हुआ है। यहां पर तीन पवित्र तीर्थ हैं, जो समस्त मनोवाञ्छित फलों को देने वाले हैं। उनके नाम है—यमुना तीर्थ है, गंगा-तीर्थ और गया तीर्थ। इन तीनों में तुम शीघ्र ही स्नान करो। इससे तुम्हारे सब प्रारब्ध कर्मों का क्षय हो जायगा और अन्तःकरण शुद्ध होगा। तब मैं तुम को ज्ञान का उपदेश करूंगा।

रैक्व मुनि के ऐसा कहने पर राजा के नेत्र हर्ष से खिल उठे। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक तीनों तीर्थों में स्नान किया। उस स्नान मात्र से उनका चित्त शुद्ध हो गया। तब वे अपने गुरु रैक्व मुनि के पास आये। रैक्व ने जानश्रुति को कृपापूर्वक ज्ञान का उपदेश दिया। उपदेश प्राप्त होने पर राजा अबाधित अनुभव से सम्पन्न हो योगी रैक्व के प्रसाद से ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गये। इति॥

प्रभु विनती

[श्री रूपनारायण दूबे]

प्रभू मेरे जीवन को जीवन बना दो,
हृदय से मेरे मोहका भय भगा दो।
बहुत पी चुके वासना विष का प्याला,
किये पाप इतने कि दामन है, काला॥
मुझे अपनी भक्ति का प्याला पिला दो,
मुझे अपनी छाया में अब तो बिठा दो।
छाई हुई है निराशा अंधेरी,
कृपा करके आशा का दीपक जला दो॥
तुम्हारे बने, तुमको अपना बना ले,
बने किस तरह ऐसा सौदा बना दो॥
कहाँ तुमको ढूंढ़ें कहाँ तुमको पावें,
मिलोगे कहाँ, यह बता दो-बता दो॥

शरीर में देव ऋषि स्थान

[आ० मार्तण्ड पं० रामस्वरूप शास्त्री आयुर्वेदाचार्य]

कायाकल्प, साधना विद्यापीठ, मढ़ौदाँ (हरियाणा)

मनुष्य शरीर अस्थि मांस का पुतला नहीं है। इसके कण-कण में दिव्य तत्वों का समावेश है। ईश्वर की सत्ता इसमें समाई हुई है। ऋषियों और देवताओं का इसी शरीर में वास है। यदि इसे समझ लिया जाय तो, अपने भीतर ही हमें वह सब कुछ मिल सकता है, जो हमें अपेक्षित है। इस विषय में—यजु-३४-५५ का प्रमाण है।

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे,
सप्त रक्षंति स व अप्रमादम्।

इस शरीर में सप्त ऋषि निवास करते हैं, वे प्रमाद रहित (अर्थात्) सावधानी से इसकी रक्षा करते हैं।

इमावेव गौतम भारद्वाजौ अयमेव गौतमोऽयं भारद्वाजः। इमावेव विश्वामित्र जमदग्निः अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निः। इमावेव वशिष्ठ कश्यपौ, अयमेव वसिष्ठः, अयंकश्यपः वागेव अत्रिः। वाचा ह्यन्नम द्यतेऽत्रिः। हवै नामै तदत्रिरिति सर्वस्य अत्ता भवति।

—बृहदारण्यक, २०/२/२/४

दायाँ कान गौतम है, बाँया कान भारद्वाज दाईं आँख विश्वामित्र, बाईं आँख जमदग्नि, दाँयी नाक वशिष्ठ बाँयी नाक कश्यप वाणि अत्रि है। जो खाता है, सो अत्ति है। अत्ति ही अत्रि है।

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे, प्रापतं स्तमशनाया पिपासाभ्या मन्ववार्जत्, ता एनमब्रुवन् आयतनं नः प्रजानी हि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्न मदामेति॥

ताभ्योगामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमल मितिः ताभ्यो पुरुष मानयत्ता अब्रुवन्, सुकृतं बतेति। पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशद्, आदि-

त्वग्भूत्वा चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशदोषधी वनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशं चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशद् । मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ।

॥४॥ एतरेय २/१ से ४

भाव—परमात्मा ने देवताओं को इस संसार में भेजा, भूख प्यास आदि की अनुभूति की, देवताओं ने परमात्मा से कहा—हमारे लिए शरीर निर्माण करो जिसमें रहकर हम अपनी आवश्यकतायें पूर्ण करें ।

परमात्मा ने इन्हें गो अश्व आदि के शरीर दिखाये, जिसे उन्होंने अनुपयुक्त बतलाया । तब परमात्मा ने इन्हें मानव देह दिखाया, देवताओं ने कहा हाँ यह ठीक एवं सुन्दर है । तब परमात्मा की आज्ञा से अपने-अपने उपयुक्त स्थानों में प्रविष्ट हो गये । अग्नि वाणी बनकर मुख में वायु प्राण बनकर नासिका में, सूर्य नेत्रों में दिशायें कानों में, औषधी त्वचा में, चन्द्रमा मन बन कर हृदय में, यम अपान बनकर नाभी में और वरुण रेतस् बनकर जननेन्द्रिय में प्रविष्ट हुआ । इस प्रकार यह शरीर देवता एवं ऋषियों का निवास स्थान है । अतः इसे शुद्ध सुन्दर एवं सुपुष्ट रखना परमावश्यक है ।

यही श्रेय एवं प्रेय दोनों मार्गों का अवलम्बन है । इसी के द्वारा जीव, भगवत्प्राप्ति प्राप्त कर सकता है । अतः 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्, शरीर ही धर्म साधन का मूल स्रोत है, इसे यों ही प्रमादवश से नष्ट न करना चाहिये ।

—सर्दी-गरमी, भय, अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता-जिसके कार्य्य में विघ्न नहीं डालते वही पण्डित कहलाता है ।

× × ×

—विवेक पूर्ण बुद्धि वाले पुरुष शक्ति के अनुसार काम करने की इच्छा रखते हैं और करते भी हैं तथा किसी वस्तु को तुच्छ समझ कर उसकी अवहेलना नहीं करते ।

× × ×

—राजन ! जैसे समुद्र के पार जाने के लिए नाव ही एकमात्र साधन है । उसी प्रकार स्वर्ग और सुख पाने के लिए सत्य का आचरण ही एकमात्र सोपान है । पर आप इसे समझ नहीं रहे हैं ।

—विदुर

योग का तृतीय अंग-आसन

[श्री हीरालाल शास्त्री फर्रुखाबाद]

योग साधन में अत्यावश्यक अङ्ग आसन ही है क्योंकि 'आसन सिद्धि' के बिना योग-साधन बन ही नहीं सकता। इसी लिए महर्षियों ने आठ अंग जो योग के बतलाये हैं वह उसी क्रम से हैं। उन उन अङ्गों के ही सिद्ध होने पर उत्तरोत्तर अंग शीघ्र सिद्ध होते हैं तभी प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि सिद्ध होकर साधक को अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है इस कारण ही आसन शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ होता है कि 'आस्यते अनेनेति आसनम्' अर्थात् जिस किसी भी आसन से बैठकर साधक साधना बिना हिले डुले कर सके। इसके लिए कम से कम २ घण्टे अधिकतम ६ घंटे एक आसन पर बिना कष्ट के बैठ सके तभी आसन सिद्ध माना गया है और तभी धारणा-ध्यान-समाधि का प्रारम्भ हो सकता है इसी आधार पर महाराज पतञ्जलिने 'स्थिर सुख आसनम्' कहा है जिस का भाव यही होता है कि जिससे बैठने पर स्थायी सुख उपलब्ध हो सके उस क्रिया को आसन कहा जाता है। आसनों के यद्यपि भगवान् शंकर ने योनियों की ८४ लाख गणना के हिसाब से ८४ लाख भेद बतलाये हैं परन्तु इस भयङ्कर कलिकाल में उनके ज्ञाता और उन पुस्तकों तक का अभाव मेरी तुच्छ बुद्धि में है भारत पर अन्य देश के आक्रमण से भारतीयता विदेशी आक्रान्ताओं की कठपुतली होकर धीरे-धीरे घटती जाती है और उन्हीं की नकल करके अपने उदर पोषण की लालसा उनकी वेष भूषा, भाषा, चरित्र सभी बदलते चले जाते हैं आज २७ वर्ष भारत के हाथ में शासन सूत्र होने पर भी परिस्थिति वश हमारी सरकार अंग्रेजों के समय के ही शिक्षित आई. सी. एस या अब आई. ए. एस जो कि भारतीयता को भूलों की देन समझते हैं उच्चपदों पर आसीन होते हैं। और उन्हीं अंग्रेजियत का धुंआधार प्रचार भारत में बढ़ रहा है आप स्वयं देख रहे हैं कि अब तो माता को 'मम्मी' और पिता को 'डेडी' कहने वाले बच्चे ही सम्भ्रान्त परिवार के माने जाते हैं फिर मातृत्व और पितृत्व का अर्थ इन मम्मी, डेडी शब्दों में कहां से आसकता है। ऐसी दशा सर्वत्र भारत में दिखाई देती है। भारत की मुख्य भाषा संस्कृत का प्रचार भाषणों के अलावा कार्य रूप में परिणत नहीं दिखाई देता। महगाई बढ़ी रुकेगी यह ईश्वर ही जाने इत्यादि कारणों से समयानुसार उपलब्ध

ज्ञाताओं और पुस्तकों के आधार पर ही साधारण मनुष्य चलकर ज्ञानार्जन करने का प्रयत्न कर सकता है। अतः सिद्धासन, कमलासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन, पर्यङ्कासन आदि प्राप्त आसनों में जो अपनी प्रकृति और शरीर के अनुसार अच्छा लगे उसी को चुनकर प्राणायाम आदि अङ्ग करने पड़ेंगे क्योंकि अब वह गुरु लोग जो अपनी सिद्ध शक्ति से तत्काल ही शक्ति पात करके सिद्ध बना देते थे वह होंगे अब भी परन्तु दुर्भाग्य से जब तक न प्राप्त हों तब क्या किया जाय। अतः स्थिर सुखमासनम् के आधार पर ही आसन पर स्थिर होने का प्रयत्न करना उपयुक्त कहा जा सकता है पहिले धीरे-धीरे जिस आसन को ठीक समझें उसका अभ्यास करे जो शरीर सहन करता जाय पैर न बदलने पड़े हिलना डुलना न पड़े उतनी देर अभ्यास को शनैःशनैः बढ़ाता जाय। जब कम से कम ३ घण्टे की स्थिरता हो जाय तब आसन सिद्ध होने की आशा करे और लगातार उसमें दृढ़ता प्राप्त करते। जब आसन की स्थिरता इस प्रकार हो जाय जैसे लकड़ी का ठूंठ जैसे का तैसा स्थिर हो उसमें किसी प्रकार की क्रिया न हो तभी मन की स्थिरता हो सकती है फिर उसी दशा में प्रत्याहार भी हो सकेगा।

प्राणायाम के विषय में लिख ही चुका हूँ। आसन सिद्ध होने पर ही प्राणायाम प्रत्याहार का प्रयत्न किया जाय। वास्तव में मेरा जो व्यक्तिगत अनुभव है उसी के आधार पर मार्ग प्रदर्शन करने के लिये साधकों को सुविधा प्राप्त हो। मैं प्रयत्नशील योगी नहीं हैं जो बात अपने अनुभव में न आवे उसमें साधक को भटकाने का लक्ष्य मेरा नहीं रहता। अतः स्पष्ट लिखना ही लक्ष्य है। प्राणायाम के लेख से ज्ञानार्जन करने के बाद प्रत्याहार की तरफ ध्यान दीजिये इसीलिये यह लेख आसन की दृढ़ता के लिए लिखा गया है भगवान पतञ्जलि ने इन सब बातों का सूक्ष्म सूत्र में ही 'प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम्' इन थोड़े शब्दों में स्पष्ट किया है जिसका स्थूल अर्थ यह है कि प्रयत्न की शिथिलता अर्थात् जैसा ऊपर लिखा है लकड़ी के ठूंठ की तरह स्थिरता रहे और भगवान में ध्यान हो। यह सब तभी घटित हो सकता है जब शरीर स्थिर हो। अन्यथा शरीर में कहीं से स्थिरता में कमी आई और मन विचलित हुआ और मन विचलित होने पर न प्राणायाम न प्रत्याहार दोनों ही नहीं हो सकेंगे और आसन स्थिरता के बाद ही धारणा ध्यान और समाधि भी हो सकेगी जो कि योग का मुख्य लक्ष्य है।

इसी आधार पर योग दर्शन में ततो द्वन्द्वानभिघातः, अर्थात् यहां द्वन्द्व का अर्थ शीत उष्ण से है आसन की स्थिरता में सर्दी, गर्मी का भी ध्यान नहीं आ सकता जैसे सर्दी, गर्मी दोनों ही सहा सकेंगे। इन्हीं कारणों से द्वन्द्वाभिघातः का अर्थ महर्षियों ने किया है कि आसन की स्थिरता से चित्त को द्वन्द्व चंचल नहीं बना सकेंगे। अतः साधन में विघ्न नहीं

जान सकते अत एव ही प्रत्याहार का लक्षण अमृतबिन्दु उपनिषद में "शब्दादि विषयांत्पंचमनःश्चचंचलाति चञ्चलम् । चित्तयेदात्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते ।"

इन सब विघ्नों को समझकर आसन सिद्धि अत्यावश्यक जान कर साधक योग साधना में प्रवृत्त हो इसी कारण योगी ब्रह्मानन्द जी ने आसन सिद्धि होने पर शरीर में उसकी पहिचान लिखी है यथा—अनालस्यमुपस्थ बलक्षयोऽनिल निरोधपटुत्वमनिर्विताशन मन्थरतायु पजायते स्थिर मर्तरिक पीवनपातिल"

अर्थात्—आलस्य का सर्वथा अभाव और आसन की स्थिरता से उपस्थ इन्द्रिय का बलक्षय अर्थात् आसन की दृढ़ता के साथ वाहिनी नाड़ियों पर दबाव पड़ने से उपस्थ इन्द्रिय का बलक्षय होना साधारण है अतः ब्रह्मचर्य की पूर्णावस्था ही रहेगी और प्राणवायु के स्थिर रखने में प्राणवायु की शक्ति भी बढ़ेगी ही तथा भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी राग द्वेष यह यह अभिमान भी धीरे-धीरे नष्ट होती जायेंगी-पवन अर्थात् प्राणवायु की मंथरता अर्थात् गति भी मन्द होती चली जायगी इस प्रकार आसन सिद्ध होने पर ही स्थिर बुद्धि वाले आसनाभ्यासी को स्वयं ही उपलक्षित होंगे जिससे वह दूसरे आगे के साधन में प्रवृत्त होने के लिये उत्तरोत्तर प्रयत्नशील होकर योगी होने में पूर्ण सफल हो सकेगा । आसन सिद्धि योग साधन की मुख्य कुञ्जी है । आशा है साधक गण इस प्रकार आरम्भ में ही यम, नियम, आसन, प्राणायाम इन चार अङ्गों में यथोचित सफल होकर क्रमशः आगे के भी चार अङ्गों पर ध्यान दें और इन उक्त चार अङ्गों पर भी क्रमशः ही विशेष ध्यान देकर सिद्धि प्राप्त करें अवश्य ही सिद्ध हो सकेंगे । योग सिद्ध में यह विशेषता है कि एक-एक अंग को क्रमशः सिद्ध करके दूसरे अङ्ग में प्रयत्नशील रहे । अवश्य सिद्धियां सामने आती जायगी यदि इन उपयोग समझने जानने में कोई त्रुटि दिखाई दे तो मुझे लिखकर पूँछले अवश्य उत्तर देने का उपक्रम करूँगा । आवश्यक यही है अतिसरल भाषा में लिखें । पढ़ने में कोई क्लेश ही नहीं हो सकता है ।

—※※—

शिक्षा एक वृक्ष है । छात्र बीज रूप में अंकुरित हो ऊपर उठकर वृक्ष बनता है । और पत्र, फल उगाकर 'सफल' कहला सकता है किन्तु वही केवल कांटेदार होकर दूसरों के कपड़े फाड़ सकता है । इस वृक्ष की भूमि माता-पिता और माली है उसके गुरुगण । पानी है वातावरण । वृक्ष रूप में ही स्वीकृत होकर इसको विकसित देख सकते हैं । यह वृक्ष कांटेदार एवं विषैला न बने तथा छाया, फल और फूल दे इसके लिए मुख्य साधन सरल और सात्विक जीवन का वरण है ।

कल्याण का स्रोत सद्गुरु-शरण

[ब्रह्मचारी श्री रघुराजसिंह]

—❀ॐ❀—

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य-
वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंति॥

उठो जागो और महान पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्व ज्ञानी लोग उस पथ को भी वैसा ही दुर्गम बताते हैं। सन्मार्ग कितना ही दुर्गम क्यों न हो परन्तु श्री सद्गुरु की शरण में रहने वाले जिज्ञासुओं के लिए उनकी कृपा से अति सुगम हो जाता है।

संतन ही से पाइए,
राम मिलन को घाट।
सहजै ही खुल जात हैं,
सुन्दर हृदय कपाट॥
दादू इस संसार में,
ये दो रतन अमोल।
एक सांई एक संत जन,
इनका मोल न तोल॥

यदि आप परम शान्ति अथवा कल्याण की आशा से संत सद्गुरु के अतिरिक्त इस जगत में किसी पदाधिकारी राजा महाराजा या अन्य किसी संसारी पुरुष की शरण लेते हैं, और उन्हें प्रसन्न कर पाते हैं तो वह तुम्हें संसारी वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकते। और यह निश्चित सत्य ही है कि संसार की किसी भी वस्तु से आपके परम शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि संसार में एक से एक बढ़कर सांसारिक संपत्ति के धनी हो चुके हैं लेकिन कोई भी उस संपत्ति से शांति प्राप्त नहीं कर सका। यदि आप और आगे बढ़कर प्रकृति की अलौकिक शक्तियों एवं देवी देवताओं की शरण में जाते हैं और कदाचित वे प्रसन्न हो जांय तो वे भी कुछ अलौकिक चमत्कार जनक सिद्धि या विशेष प्रकार के ऐश्वर्य भोग की सामग्री के अतिरिक्त आपको वह नहीं दे सकते, जिससे आप परम शांति एवं शाश्वत आनंद लाभ कर सकें। वास्तव में जिस साधन के द्वारा, जिस बल के द्वारा परम शांति एवं परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है, उसके

पूर्ण ज्ञाता और दाता एक मात्र गुरुदेव ही हैं अतः आप किसी अन्य की शरण में न जाकर श्री सद्गुरु की ही शरण लीजिए और उन्हें प्रसन्न कीजिए। श्री गुरु कृपा से जो परम धन प्राप्त होता है, वह लोक परलोक में और किसी से नहीं मिल सकता।

इसलिए किसी संत ने कहा है कि भगवान् को पाने के लिए और कुछ भी उपाय न करके पहले भगवान् के भक्तों की शरण लीजिए क्योंकि भगवान् के प्रेमी भक्त भगवान् से अवश्य मिला देंगे।

हरि से तू जनि हेत करि,
हरि जन से कर हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं,
हरिजन हरि ही देत॥

यदि आप परम शान्ति चाहते हैं तो गुरुदेव की शरण में आकर उनसे संसार के पदार्थों की याचना न कीजिए। बल्कि उनकी आज्ञा पालन करते हुए उनके पास जो दिव्य संपत्ति है, उसी को प्राप्त कर सत्यानन्द के भागी हो जाइये। श्री सद्गुरु की सम्पत्ति के आप तभी अधिकारी हो सकेंगे जब अपने को स्वतंत्रता पूर्वक उनकी शरण में स्थिर रखने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे। शरण में स्थिर रहने की योग्यता तब प्राप्त होगी जब आप अपने मन को विषयासक्ति से मुक्त करके स्वाधीन कर लेंगे। जिसका मन स्वाधीन है वही गुरुदेव की शरण में अपने को समर्पण कर सकता है, और वही अपने को कृतार्थ कर सकता है।

संसार में सद्गुरु का संगी ही स्वस्थ संसार में सफलता पूर्वक कार्य करने में सिद्ध हस्त होता है निष्काम प्रेमी होना स्वस्थ पुरुष का काम है। और सहज समाधि में ही उसका विश्राम है। जगत प्रपंच से स्वस्थ पुरुष ही विरक्त है, और वही जगदाधार सत्य में अनुरक्त है। स्वस्थ पुरुष ही सत्य के ध्यान में मग्न है क्योंकि उसमें सद्गुरु के ज्ञान का बल है स्वस्थ हुए बिना जीवन व्यर्थ है स्वस्थ पुरुष ही सदा समर्थ है। जिनकी कृपा से स्वस्थ पुरुष का सर्वत्र शान्तिदायी सर्वोत्कृष्ट अधिकार है उन स्वास्थ्य के दाता श्री गुरुदेव को नमस्कार है। श्री सद्गुरुदेव के हाथों में गया हुआ कुपात्र जीवन भी सुपात्र बन जाता है। अज्ञान रूपी रोग से ग्रसा हुआ आधिव्याधि उपाधि में फंसा हुआ और काम क्रोधादि विकारों से कसा हुआ मानव गुरुदेव की शरण में जाकर समस्त बन्धन दुखों से मुक्त हो जाता है और परमानन्द स्वरूप से संयुक्त होता है। संसार में संपूर्ण प्राणी मात्र के सच्चे हितैषी गुरुदेव ही हैं और वे ही समस्त संसार को कल्याण का मार्ग दिखाते रहते हैं यही ज्ञात या अज्ञात रूप से सद्ज्ञान प्रकाश द्वारा सोये हुये को जगाते हैं।

वह किसी की करुणा पूर्ण पुकार सुनकर दौड़े चले आते हैं, पतितों को पावन बनाते हैं और जो कोई शरणागत हो उसका सब तरह से कल्याण ही करते हैं इसी से वे दीन बन्धु अधमोद्धारक कहलाते हैं।

तीरथ नहाए एक फल,
सन्त मिले फलचारि।
सद्गुरु मिलें अनेक फल,
कहत कबीर विचारि॥

सद्गुरुदेव की शरण में आ जाने का सौभाग्य जिसको प्राप्त हो गया हो उसके लिए फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

मनुष्य की चिन्मात्र स्वरूप अन्तरात्मा में अनेकों प्रकार की उच्चतम सुन्दर शक्तियाँ सुप्त रूप में छिपी पड़ी हैं, उनकी जागृति अथवा उनका क्रम पूर्वक विकास सद्गुरु प्रदत्त युक्तियों के द्वारा ही होता है। उस का अनुभव करते हुए मुझे श्री रामचरित मानस के शब्द याद आ रहे हैं:

गुरुबिन भवनिधि तरै न कोई।
जो बिरंचि शंकर सम होई॥

श्री गुरुदेव की महिमा का अगाध समुद्र तो सभी भावुक भक्त देखते ही रहते हैं, तो मैं उस महिमा सिन्धु के दो चार बिन्दु किसी को दिखाकर क्या संतोष दे सकता हूँ। क्योंकि वह तो प्रत्येक जिज्ञासु शिष्य के लिए अनुभव-गम्य तत्त्व है॥

कबिरा यह तन जायगा,
कवने मारग लाय।
कै संगत करि साधु की,
कै हरि के गुण गाय॥

संत सद्गुरु की भक्ति उदय होने पर भोगों से विरक्ति होना सुगम है क्योंकि गुरुदेव के प्रति प्रेम भाव तभी जाग्रत होता है जब सदाचरण की ही जीवन में प्रधानता होती है और इसी से सद्गुणों की वृद्धि होती है। सदाचार का पालन करना गुरुदेव की मुख्य आज्ञा है इसी से अन्तः करण निर्मल होता है तभी सुख स्वार्थ के प्रति राग का त्याग होता है।

श्री सद्गुरु की समीपता में पहुँच कर यदि शिष्य में असत्संगियों की तरह सांसारिक सुख दुःख लोभ मोह क्रोध आदि मनोविकार बने रहे तो सत्संग का फल ही क्या मिला अतः सद्गुरु के समागम का प्रथम फल तो यही है कि मोह का त्याग हो, क्योंकि मोह के त्याग हुए बिना इस पवित्र मार्ग में चल ही नहीं सकते। मोह नष्ट होने पर भक्ति के सद्भाव दृढ़ होते हैं, जिसका मोह दूर नहीं हुआ उसको या तो सद्गुरु नहीं मिले या फिर उसने सच्ची जिज्ञासा से सद्गुरु का समागम नहीं किया। जिसने सद्गुरु का सत्संग किया है वह संसार का संगी नहीं रह गया। जिसका मन ऐहिक भोगों में रस ले रहा है उसे तो संसार में ही रहना होगा। भोग सुखों की कामना से विषयों में राग दृढ़ होता है और राग के कारण ही द्वेष चरितार्थ होता है जहां द्वेष है वहीं क्रोध उत्पन्न होता है और जहां क्रोध का स्थान है वहीं अहंकार बहुत प्रबल होता है।

कोटि किरण लागे रहें,
एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया,
जब आया अहंकार॥

तब विषय भोग जनित सुख पालना का त्याग होगा तभी मोह और लोभ के लिए स्थान न रह जायगा जहाँ मोह और लोभ न होंगे वहां क्रोध भी नहीं आयेगा। इस प्रकार विकार रहित होने पर ही कोई इस पवित्र मार्ग में आगे की ओर चल सकता है।

—※※※—

तीन मुक्तक—

※ श्रेयस्कर-जीवन-लक्ष्य ※

परहित करके यश-लिप्सा की, करे न चाह, सुपथ अपनाए,
तप तप ताप, शुभ्र मन से ही, जन-सेवा में शक्ति लगाए,
भव-भय-भ्रान्ति, विविध बाधाएँ, पार करे सब साहस से ही,
दलित, दीन-दुख दूर करे नित, जीवन का यह लक्ष्य बनाए,

※ आत्म-कल्याण कैसे ? ※

भौतिक-सुख, कामना आदि को, त्याग, करे ईश्वर की भक्ति,
ज्ञान, ध्यान, साधन, उपासना, दे देते मानव को शक्ति,
श्रेयस्कर निष्काम-कर्म है, फल इच्छा का कर दे त्याग,
मिले आत्म-कल्याण साथ ही, साधक को प्रभु की अनुरक्ति,

※ साधना से सिद्धि पाते ※

संसार-सागर से सदा, सुकृती उतर उस पार जाते,
युग-युगों तक जगत-जन, उनके यहां गुण-गीत गाते,
सद्पंथ श्रेयस्कर सुखद, सत्सङ्ग, सेवा साधना है।
शङ्कर स्वयम् संलग्न साधक साधना से सिद्धि पाते॥

—श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

गंगाजी

[श्री गंगादास जी]

—※—

[पुण्यतोया गंगा भारत की विश्व विख्यात नदी-निधि है। भारतीय संस्कृति के उद्भव और विकास की स्वर्णिम रेखायें इसके किनारों पर तब से अपना अस्तित्व रखती है जब से कि इस सृष्टि का जन्म हुआ है। न जाने वेदों की कितनी ऋचाओं का सृजन ऋषियों ने इसके पावन कूलों पर अपना आश्रम बनाकर किया है। प्रस्तुत लेख में गंगाजी के ऐसे ही महत्व का वर्णन सुयोग्य लेखक द्वारा किया गया है। —सं० सम्पादक]

गंगा संसार की परम प्रसिद्ध नदी है। हिन्दुओं में तो इस नदी की बड़ी महिमा है। विष्णुपदी, जान्हवी, भागीरथी, त्रिपथगा, सिद्धापगा, स्वर्गापगा इत्यादि गंगा के कतिपयों नाम है। आयुर्वेद की दृष्टि से गंगा का जल स्वादिष्ठ, स्वच्छ, शीतल, रोचक, दीपक, पथ्य पवित्र, तृषा और मोहनाशक, एवम् बुद्धिवर्धक है। धार्मिक दृष्टि से पुराणों में गंगा-स्नान पाप-नाशक बताया गया है। पुराणों में उल्लेख है कि मरने पर गंगा में शव या केश, नख, अस्थि आदि डाल दिये जाय तो अवश्य ही मुक्ति मिलती है। गंगावतरण के सम्बन्ध में पुराणों में कई कथाएं है। गंगा की उत्पत्ति विष्णु के चरणों से हुई बताई जाती है, इस लिए उसका नाम विष्णुपदी पड़ा। गंगा का वास ब्रह्माजी के कमण्डलु में माना गया है। इस कमण्डलु से ही भगीरथ बड़ी तपस्यापूर्वक उसे धराधाम पर लाए, इसलिए गंगा का नाम भागीरथी पड़ा। गंगा पृथ्वी पर आकर छिन्न-भिन्न न हो जाय, इसलिए भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे अपने सिर पर धारण कर लिया। सगर के साठ सहस्र पुत्रों की मुक्ति के लिए ही गंगावतरण हुआ बताया जाता है। जब गंगा जी ने अपने प्रबल प्रवाह में जन्हु मुनि का आश्रम बहा दिया तो वे बड़े अप्रसन्न हुए और क्रोध-वश सारी गंगा को पी गये! परन्तु पीछे देवता तथा ऋषि-मुनियों के बहुत अनुनय-विनय करने पर जन्हु ने गंगा को अपने कान द्वार पुनः प्रवाहित कर दिया, इस लिए वह जान्हवी कहलाई। ये सब संकेत पुराणों के है जो विश्वासमूलक ही समझे जाने चाहिए।

गंगा का उद्गम-स्थान मानसरोवर माना जाता है, परन्तु मानसरोवर से चलने वाली

धारा पर्वत-शृंखलाओं और बर्फ से ढकी रहने के कारण अदृश्य सी रहती है, और सर्व प्रथम गोमुख में आकर उसके दर्शन होते हैं। यह स्थान गढ़वाल राज्य में है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई १३८०० फुट है। फिर चार कोस चलकर यह धारा गंगोत्तरी पहुँचती है। जन्हु पर्वत से निकली जान्हवी धारा भी गंगा से यहां मिलती है। नन्दप्रयाग में विष्णुगंगा का, स्कन्द-प्रयाग में पिंडर नदी का रौद्र-प्रयाग में मन्दाकिनी का कर्ण-प्रयाग में कर्णगंगा का और देव-प्रयाग में अलकनन्दा का संगम भागीरथी से होता है। फिर भागीरथी गंगा के नाम से प्रवाहित होती है। प्राय: डेढ़ सौ मील की यात्रा कर गंगा लक्ष्मण झूला, ऋषिकेश होती हुई हरिद्वार पहुंचती है। नन्द-प्रयाग, रुद्र-प्रयाग, कर्ण-प्रयाग, देव-प्रयाग आदि-आदि तीर्थस्थान हैं, जो गंगा के कारण अपना बहुत बड़ा महत्त्व रखते हैं। हरिद्वार से गंगा को समतल भूमि मिलती है और पहाड़ों से उसका साथ छूटता है। उद्गमस्थान के निकट गंगा की चौड़ाई १८ हाथ और गहराई एक हाथ से कुछ अधिक बताई जाती है। क्रमशः नीचे आते-आते दूसरी नदियों के मेल से गंगा का आयतन बढ़ता गया है। गंगा के किनारे, हरिद्वार से आगे गढ़मुक्तेश्वर, अनूपशहर, कर्णवास, राजघाट, रामघाट, सोरों, बिठूर, प्रयाग, विन्ध्याचल, काशी आदि मुख्य तीर्थ स्थान हैं। कलकत्ता में गंगा का नाम हुगली हो गया है। गंगा के उद्गम स्थान से ४२० कोस की दूरी पर यमुना, ३०३ पर घाघरा, २४१ पर गोमती २३२ पर सोण, २२५ पर गण्डकी, १८६ पर रामगंगा, १६२ पर कोसी, १२० पर महानदी, ७० पर कर्मनाशा, ४० पर अलकनन्दा, २० पर नीलगंगा आदि नदियां मिली हैं। हरिद्वार में ७००० और काशी में १९००० घनफुट जल प्रति सैकिण्ड गंगा में बहता है। गंगा के प्रवाह के साथ हिमालय से इतनी अधिक मिट्टी आई है कि उससे समुद्र का कुछ भाग अट कर जनपद योग्य बन गया है। एक बार गाजीपुर में परीक्षा करके देखा गया तो विदित हुआ कि वहां गंगा ६३६८०००००टन मिट्टी प्रति वर्ष ला-कर जमा करती है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि गंगा प्रतिवर्ष कितनी मिट्टी अपने साथ बहाकर लाती है। इस मिट्टी द्वारा न जाने अब तक कितना जलाशय स्थल के रूप में परिणत हो गया है।

गंगा-जल में एक विशेषता यह भी है कि वह पार्श्ववर्ती भूमि को उर्वरा बना देता है। इसीलिए जहां गंगा से सिंचाई होती है, वहां बहुत अच्छी पैदावार होती है। अभी थोड़े दिनों पूर्व, रेलों का जब तक अधिक जाल नहीं पुरा था, गंगा की नहरों में बहुत सी नावें चलती थीं जिनके द्वारा माल ढोने और लोगों की यात्रा का उद्देश्य पूरा किया जाता था। गंगा की कई नहरें हैं जो 'अपर' और 'लोअर' कैनाल कहलाती हैं। बड़ी नहर हरिद्वार से निकली है। इसका कार्य १८४२ ई० में आरम्भ और १८५४ ई० में समाप्त हुआ। इस नहर के

निर्माण में २ करोड़ २४ लाख और २४ हजार रुपये व्यय हुए। इस नहर को निकालने वाले काटली साहब नामक एक अंग्रेज थे। गंगा की और भी कई नहरें हैं।

प्रयाग में गंगा से प्रसिद्ध नदी यमुना मिलती है, अतएव इस तीर्थ का बड़ा महत्त्व है। सरस्वती नदी गुप्त ही मानी जाती है। इस प्रकार प्रयाग त्रिवेणी-संगम कहलाता है। प्रयाग का नाम इलाहाबाद सम्भवतः सम्राट् अकबर के समय में पड़ा था। पहले प्रयाग में गंगा की इतनी अधिक गहराई थी कि उसमें 'स्टीमर' चलते थे, परन्तु कई नहरें निकल जाने के कारण अब वह गहराई नहीं रही। मुर्शिदाबाद जिले में गंगा की दो प्रधान शाखाएँ हो जाती हैं। पद्मानदी इसी विभाग का परिणाम है। गंगासागर जहाँ गंगा समुद्र से मिलती है, बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। माघ संक्रान्ति को वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। गंगा किनारे जहाँ-जहाँ तीर्थ हैं, वहाँ साल में एक-दो बार बड़े-बड़े मेले लगते हैं, जिनमें से कितने ही मेले तो ऐसे हैं, जिनमें लाखों यात्री सम्मिलित होते हैं। गंगा की महिमा से सारी हिन्दू जाति का हृदय ओत-प्रोत है, और गंगा-जल की उपयोगिता को तो अ-हिन्दू भी मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करते हैं। गंगाजल में रोगियों को निरोग करने की अद्भुत शक्ति विद्यमान है। विदेशियों ने भी गंगाजल की महिमा का बड़ी सुन्दरता और कुशलता से वर्णन किया है। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी बँगला आदि सभी भाषाओं में गंगा की प्रशंसा में बड़े-बड़े ग्रन्थ और काव्य रचे गये हैं। गंगा जी के प्रभाव से अन्न की पैदावार तो होती ही है, साथ ही सैकड़ों प्राण संचारिणी जड़ी-बूटियों की उत्पत्ति भी होती है। बहुत सी औषधियाँ तो ऐसी हैं जो गंगाजी के किनारे ही पैदा होती हैं, अन्यत्र नहीं उगतीं। गंगाजल को लोग घरों में गंगाजलियों में भरकर रख छोड़ते हैं क्योंकि वह जल बरसों रखा रहने पर भी सड़ता नहीं। गंगा की महिमा सचमुच अपार है, यह असंख्य मनुष्यों को अन्नदान देती, वस्त्र देती औषधियाँ देती और उन्हें जीवन तथा आरोग्य प्रदान करती है। कोटि-कोटि जनता धार्मिक दृष्टि से गंगा के दर्शन और स्पर्शन से अपने को धन्य समझती है। गंगा का नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य सहृदय और भावुक दर्शक के आगे स्वर्गीय आनन्द की सुधा-धारा बहा देता है। जो लोग प्रत्येक वस्तु को रुपये आनों में ही देखने के अभ्यासी हैं, वे भी यदि ध्यानपूर्वक देखेंगे तो विदित होगा कि अकेली गंगा अन्न, वस्त्र, लकड़ी आदि दान देकर राष्ट्र का कितना उपकार कर रही है।

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था सत्योदका शील तटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥

—महाभारत

यह आत्मा ही नदी है इसमें संयम पूर्वक जो पुण्य कर्म किये जाते हैं वे ही इसे तीर्थ रूप किये रहते हैं । और सत्यव्रत धारण करना ही इसमें जल है एवं शील तथा सरल स्वभाव ही इसके तट हैं । सब प्राणियों पर दया भाव रखना इस आत्म-नदी की लहरियां हैं । हे युधिष्ठर ! इस प्रकार की नदी में प्रति दिन स्नान करोगे, तभी अन्तः शुद्धि हो सकती है । जल आदि के ऊपरी स्नान से नहीं । इसलिए बाह्य शुद्धि के साथ आन्तरिक शुद्धि अवश्य होनी चाहिए ।

× × ×

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत ।
नाना रोगो भवत्तस्य किंचियोगो न सिद्ध्यति ॥

मिताहार के बिना ही कोई योग साधन करने लग जाता है तो वह योग सिद्धि के बदले रोग सिद्धि पा जाता है यानी रोगी बन बैठता है ।

× × ×

न वेष धारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा ।
क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेतन्न संशयः ॥

योग सिद्धि में न तो योगियों का सा वेष धारण कर लेना कारण है और न योग विषयक ग्रन्थों का पढ़ लेना कारण है । किन्तु योग की विहित क्रियाओं का करना ही मुख्य कारण है । इसलिए गुरु और शास्त्रों को समझकर क्रियात्मक कार्य करना चाहिए ।

× × ×

अम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्षपं कटु ।

खटा, रूखा, तीक्ष्ण (मिर्च आदि) नमक तेल और कड़ुवा, इन पदार्थों का सेवन साधक को नहीं करना चाहिए ।

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत ॥

सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और झूठ बोलने के समान दूसरा पाप नहीं है। यहां तक कि जिस ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है वह ज्ञान भी सत्य की समता नहीं रखता। इसलिये सर्वदा सत्य बोलना चाहिये।

× × ×

क्षमा खड्ग करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥

जिस प्रकार तृण रहित स्थान पर पहुंच कर अग्नि अपने आप ही शान्त हो जाती है। उसी प्रकार क्षमा रूपी तलवार जिसके हाथ में रहती है उसे दुष्ट भी नहीं सता सकते हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले को अवश्य क्षमा शील बनना चाहिये।

× × ×

अर्थ हानौ च बन्धूना वियोगे चाप्य संपदि ।
तयोः शान्तौ च सर्वत्र चित्तस्य स्थापन धृतिः ॥

धृति उस पदार्थ का नाम है जिसके प्रभाव से अर्थ हानि और अपने प्रिय पुत्रादि के वियोग एवं बिल्कुल निर्धन अवस्था में भी मनुष्य के चित्त में कुछ घबड़ाहट नहीं होने पाती इससे वह प्राणी आनन्द पूर्वक बैठा रहता है। सारांश यह है कि जिसके हृदय में 'धृति' का सर्वदा वास रहता है वह सुख अथवा दुःख किसी भी अवस्था में हो, उसका कर अर्थ का अनर्थ नहीं कर सकता। इसलिये मनुष्य को धैर्य (धृति) वान् होना चाहिये।

× × ×

गुरु प्रसादाल्लभते योगमष्टाङ्ग संयुतम् ।
शिव प्रसादाल्लभते योग सिद्धि च शाश्वतीम् ॥

प्रथम गुरु की कृपा से अष्टांग योग प्राप्त होता है फिर शिव जी की कृपा से अविनाशी सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

शास्त्र ने भी कहा है कि 'आचार्यवान्पुरुषो वेद' अर्थात् आत्म तत्व को वही पुरुष जान सकता है जो आचार्यवान् (गुरु वाला) होता है।

—योग सोपान

स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें

[साहित्याचार्य श्री शारदा शङ्कर त्रिपाठी, एम, एस-ए.]

स्वास्थ्य-रक्षा मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है। अस्वस्थ मनुष्य लोक-परलोक सम्बन्धी कोई भी काम नहीं कर सकता। कहा भी है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-साधन के लिये आरोग्यता का ही अटल आधार है। अत: नीचे आरोग्यता सम्बन्धी कुछ बातों का उल्लेख किया जाता है—

ठंडे पानी से स्नान—

प्रात: काल ठंडे पानी से स्नान करना बहुत आवश्यक है, इससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है। और शरीर को शक्ति प्राप्त होती है। जुकाम और ठंड का असर भी शीतल जल से स्नान करने वालों को नहीं होता। प्रात: काल ठंडे पानी से नहा लिया जाय तो शरीर में दिन-भर स्फूर्ति रहेगी और थकावट न आएगी, भूख भी अच्छी लगेगी। नित्य नहाने से शरीर का मल दूर हो जाता है, और चर्म-रोग नहीं होने पाते। परन्तु जो लोग निर्बल हों, और ठंडे पानी से स्नान करने से उनका शरीर कांप उठे उन्हें गर्म या गुनगुने पानी से नहाना चाहिए। नीरोग और स्वस्थ मनुष्यों को गर्म पानी से नहाना लाभ नहीं पहुंचाता बल्कि किसी अंश में हानिकारक है। जिस समय पसीना आ रहा हो, या शरीर चलने-फिरने या शारीरिक परिश्रम से गर्म हो रहा हो, उस समय नहाना ठीक नहीं, थोड़ा विश्राम लेकर नहाना उचित है। जाड़ों में ठंडा पानी प्राय: हानि नहीं करता, ठंडी हवा नुकसान पहुंचाती है, इसलिए जहां तक सम्भव हो, बन्द जगह में स्नान करना चाहिये। नहा कर शरीर को भले प्रकार कपड़े से पोंछ लो, तब कपड़े पहनो। ठीक तरह से पानी न पोंछने से दाद, खुजली आदि रोग हो जाने की आशङ्का रहती है।

तेल की मालिश—

शरीर में तेल की मालिश करने से भी बहुत लाभ होता है। इससे रक्त की गति बढ़ जाती है, जिससे स्वास्थ्य की उन्नति में सहायता मिलती है। मालिश का अर्थ है सारे शरीर पर हथेली को रगड़ना। प्रारम्भ में तो मालिश हलकी और धीरे-धीरे ही होनी चाहिए, पीछे अभ्यास होने पर ज़ोर-ज़ोर से भी की जा सकती है। मालिश करने से पूर्व तेल दोनों हाथों में लगा लेना चाहिए। इससे मालिश में तो सुभीता भी होगा और जलन या खरखराहट

भी न होने पायेगी। साथ ही तेल का कुछ अंश शरीर में भी प्रविष्ट हो जायगा। मालिश करने से थकावट दूर होती है, त्वचा सुन्दर, चमकीली, दृढ़ और कोमल बन जाती है, मालिश कराने से चर्म-रोग तो होने ही नहीं पाते। यदि कोई मनुष्य नित्य मालिश करावे तो उसका स्वास्थ्य आशातीत उन्नति कर सकता है और बहुत अंश तक रोगों से छुटकारा पा सकता है। हाथों और पावों की मालिश में इस बात का ध्यान रहे कि मालिश नीचे से ऊपर की ओर होनी चाहिए। शरीर की सब ही की मालिश जरूरी है। ऐसा करने से चेहरा चमकदार और सुन्दर बनेगा, उसके फोड़े-फुन्सी और झुरियां दूर हो जावेंगी।

दूसरों के कपड़े मत पहनो—

प्रायः लोग दूसरों के वस्त्र पहन लेते हैं। ऐसा करने से रोग फैलने की बहुत सम्भावना होती है। बीमार के कपड़े पहनने से बीमारी के कीटाणु शरीर में लग जाते हैं, जो उसके पसीने आदि के द्वारा कपड़ों में बसे होते हैं। रोगी ही नहीं नीरोग व्यक्ति के भी उतारे हुए कपड़े न पहनने चाहिए, क्योंकि उनमें लगा हुआ पसीना तथा तथा मैल शरीर में पहुँच कर तरह-तरह की बीमारियां पैदा कर देगा। बिना स्वच्छ किये किसी के कपड़े न पहनो। कपड़ों की गन्दगी गरम पानी में डालने तथा साबुन आदि से धोने पर दूर होती है। अधिक अच्छा यही है कि कभी किसी के कपड़े पहन कर अपने शरीर को गन्दा न बनाया जाय।

जूठा न खाओ—

जूठा खाना-पीना भी स्वास्थ्य के लिए बहुत हानि-कारक है। प्रायः लोग स्नेह के कारण एक-दूसरे का जूठा खाते पीते रहते हैं। यह अत्यन्त अनुचित है, इस प्रकार अनेक रोग फैलते हैं। हुक्का या सिगरेट पीना इसलिए भी दूषित तथा हानिकारक बतलाया गया है। बहुत से लोग थालियों में जूठन छोड़ देते हैं। ऐसा करना शिष्टाचार समझा जाता है, परन्तु यह ठीक नहीं है। इससे जहां खाद्य सामग्री का दुरुपयोग होता है वहां मेहतर आदि जूठा खाने वालों को स्वास्थ्य सम्बन्धी हानि भी पहुँच सकती है। इसलिए जूठा न तो कभी किसी के लिए छोड़ना चाहिए और न स्वयं खाना-पीना उचित है। अगर भंगी को देना ही है तो शुद्ध खाना दो, जूठा देकर उसमें दैन्य-भाव की वृद्धि करना तथा उसके स्वास्थ्य को बिगाड़ना, अत्यन्त अनुचित है। यही बात नित्यप्रति घर के जीवन में भी स्मरण रखनी चाहिए। अर्थात घर में भी किसी को जूठा न खाने-पीने दो।

दीर्घजीवी बनो—

दीर्घजीवी बनने के लिए नीचे लिखी कुछ आवश्यक बातों की ओर ध्यान देना चाहिए चाय, कहवा, भांग, शराब, हुक्का, सिगरेट आदि को कभी मुंह न लगाओ, मांस न खाओ, सादा जीवन रखो, व्यायाम करो, ठीक समय पर सोना और जागना अनिवार्य समझो, जितनी भूख हो उससे कुछ कम ही खाओ,

जीवन में संयम का प्रवेश करो, शुद्ध जल-वायु और सात्विक भोजन का सेवन करो। चिन्ता मनुष्य की आयु को बहुत कम कर देती है। उद्योग करने पर भी जो परिणाम हो उसी पर सन्तुष्ट रहो। दूध, सब्जी और फल खूब खाओ, नींद भरकर अच्छी तरह सोओ। भोजन खूब चबा-चबा कर खाओ। दांतों की रक्षा पर पूरा ध्यान दो। औषधियों के दास न बनो। प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठकर उषःपान करो और शौचादि से निवृत्त होकर टहलने जाओ।

खुली हवा में टहलना—

स्वास्थ्य के लिए व्यायाम बहुत आवश्यक है। व्यायाम कितने ही तरह के हैं। इनमें 'आसन' बहुत उपयोगी हैं। इनसे शरीर में थकावट भी नहीं आती और सारे शरीर में रक्त संचालन भी ठीक तरह से हो जाता है, जिससे शरीर के सब रंग-पट्ठों को बल मिलता है। खुली हवा में टहलना ऐसा व्यायाम है, जो स्त्री, पुरुष, वृद्ध-युवा बालक सबके लिए बड़ा उपयोगी है। टहलने का क्रम निश्चित और नियमित होना चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार ही टहलना ठीक है। टहलते समय स्वास्थ्य का ही लक्ष्य रहना चाहिए एक गति से टहलो, और कभी गप-शप द्वारा उसकी उपयोगिता को नष्ट न करो। टहलते समय श्वास को नियमित रखना आवश्यक है।

योगासनों से लाभ

योगासनों के अभ्यास से शरीरगत वायु की गति का मन्दापन, निरालस्यता, उत्साह की वृद्धि, शरीर की नीरोगता होती है और क्षुधा पिपासा आदि की बाधायें दूर होती हैं। इसलिए साधकों को सर्व प्रथम आसनों का अभ्यास करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने आसन की परिभाषा में लिखा है :

स्थिर सुखमासनम्

—योग-दर्शन

अर्थात्—जिस तरह बैठने में शरीर की स्थिरता सुख पूर्वक रहे उसे आसन कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं। परन्तु योगाचार्य सूत्रकार के अनुसार किसी भी आसन से अपनी रुचि के अनुकूल बैठना चाहिए। क्योंकि जिसमें मन को शरीर में पीड़ा आदि की प्रतीति न हो वही आसन कहलाता है।

जीवन-निर्माण को नई दिशा देने वाले

हमारे उपयोगी प्रकाशन

पुस्तक	मूल्य
१. योगासन चित्रपट (अप्राप्य)	१)५०
२. श्री योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की स्वहस्तलिखित जीवन कथाएँ व सदुपदेश	५)००
३. योगासन (सचित्र)	४)००
४. श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी	२)००
५. योगिराज श्री मुलखराज जी	२)००
६. आठ योगी	२)००
७. समाधिस्थ-योगिनियाँ	२)००
८. सवाँई के चमत्कारिक-चरित्र	२)००
९. मन की एकाग्रता के साधन	१)००
१०. भोग-रोग और योग	१)५०
११. जीवन-तत्व साधन	१)००
१२. यम-नियम	१)००
१३. योग-क्या ?	)५०
१४. योगेश्वर-चरित्र माला (भजन)	२)००
१५. श्री महाप्रभु जी का गीत-काव्य (कविता)	१)००
१६. श्री सद्गुरु-संकीर्तन भजन-माला	१)००
१७. सुधा-संगीत	१)००
१८. इन्दु शर्मा के आठ भजन	)५०
१९. श्री सद्गुरु-स्तवन (गीत-काव्य)	)६०
२०. योगामृत-भजनावली	)५०
२१. जीवन-तत्व साधन-व्याख्याकार श्री गिरीशचंद्र वर्मा	५)
२२. Practices for Developing The Life-force (Jiwan Tattwa Sadhan)	२)००
२३. सुमनाञ्जलि (श्री गुरुदेवजी के जन्म-दिवस सम्बन्धी रचनाएँ)	)५०

नोट—उपर्युक्त पुस्तकें मँगाने पर उक्त मूल्य के अतिरिक्त डाक व्यय मँगाने वाले के जिम्मे और होगा।

व्यवस्थापक

श्री सिद्ध गुफा-योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाँई (आगरा)

Sidhayoga Regd. No. L. A[illegible]-0008

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक, संपादक तथा संरक्षक
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

आहार-शुद्धि

अभक्ष्य निहृत्या तु चित्तं शुद्धं भवेत् ।
आहार शुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वतः ॥

अर्थात्—आहार में अभक्ष्य को त्याग देने से चित्त शुद्ध हो जाता है। आहार शुद्ध होने से चित्त की शुद्धि स्वतः ही हो जाती है।

इस प्रकार साधक की भावना पर प्रभाव [illegible] की महत्ता [illegible] है। क्योंकि मन भी शरीर का एक भाग है, इसी लिए उसे ग्यारहवीं इन्द्रिय भी कहते हैं। उस मन पर आहार का भारी प्रभाव पड़ता है, इसलिये शरीर की उन्नति अवनति बहुत कुछ उसी पर निर्भर करती है। छान्दोग्योपनिषद के अनुसार भी 'आहार शुद्ध होने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण शुद्ध होने से [illegible] हो जाती है तथा आत्मा के [illegible] हृदय की [illegible]। [illegible]

[illegible] अन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ।

अर्थात्—मनुष्य जैसा अन्न खाता है, [illegible] है।

मुद्रक—[illegible] प्रेस, [illegible], आगरा-[illegible]